bdkbl 27 ^/kqoLokfeuh* ¼t;'kdj *ilkn*½ % okpu vkj 0;k[;k

bdkbl dh :ijs[kk

27.0 उद्देश्य

27.1 प्रस्तावना

27.2 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक

27.3 संदर्भ सहित व्याख्या

27.4 सारांश

27.5 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

27-0 mÌs';

इस इकाई में 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का वाचन करने के बाद आप

- जयशंकर 'प्रसाद' के साहित्यिक योगदान के बारे में बता सकेंगे;
- बता सकेंगे कि 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक लिखते समय उन्होंने किन ऐतिहासिक-साहित्यिक स्रोतों को आधार बनाया;
- 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की कथा बता सकेंगे;
- इसकी विभिन्न घटनाओं और पात्रों के विषय में चर्चा कर सकेंगे;
- इसके विविध अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या कर सकेंगे; और
- इसमें प्रयुक्त कठिन शब्दों और मुहावरों का अर्थ बता सकेंगे।

27-1 iLrkouk

पिछली इकाई में आप हिंदी नाटक के स्वरूप और विकास के बारे में पढ़ चुके हैं। आपने पढ़ा है कि हिंदी नाटक की विकास यात्रा में जयशंकर 'प्रसाद' एक महत्त्वपूर्ण नाम है। भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1884) के बाद कुछ समय तक हिंदी में नाटक लेखन की गति मंद पड़ गई। कई दशकों तक नाट्य लेखन और रंगकर्म न के बराबर ही रहा। 'प्रसाद' जी ने हिंदी नाटक को नयी दिशा, नए विषय, नयी भाषा और नयी भाव-भंगिमा प्रदान की। यही कारण है कि एक काल-खंड विशेष को (1910-1933 ई.) हिंदी नाटक के क्षेत्र में ''प्रसाद युग'' के नाम से जाना जाता है।

y[kd ifjp;

जयशंकर 'प्रसाद' का जन्म सन् 1889 ई. में काशी के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। यह परिवार तम्बाकू का व्यापार करता था और 'सुँघनी साहु' के नाम से प्रसिद्ध था। बचपन से ही उन्हें साहित्यिक-सांस्कृतिक वातावरण मिला था। संगीत, कला और कविता के इस माहौल ने उन्हें जो सुरुचिपूर्ण संस्कार दिये थे उनको 'प्रसाद' ने अपने गहन अध्ययन और असाधारण प्रतिभा के बल पर अत्यधिक गहराई और व्यापकता से विकसित किया। बचपन में उनकी अधिकांश शिक्षा घर पर ही हुई। कुछ समय के लिए वे क्वींस कालेज, वाराणसी में भी पढ़े। स्वाध्याय से उन्होंने संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेजी और उर्दू का गंभीर ज्ञान प्राप्त किया। वे दर्शन और इतिहास के अच्छे विद्वान थे। साहित्य की सभी प्रमुख विधाओं को उन्होंने अपनी लेखनी से समृद्ध किया। कविता और नाटक के क्षेत्र में युग प्रवर्त्तक होने का गौरव प्राप्त करने के साथ कथा साहित्य और निबंध के क्षेत्र में भी उनका अपूर्व योगदान है। 'छायावाद' नामक काव्य आंदोलन के प्रमुख कवि के रूप में उन्होंने 'झरना', 'आँसू', 'लहर' और 'कामायनी' जैसी अप्रतिम कृतियों की रचना की। 'कंकाल', 'तितली' और 'इरावती' (अधूरा) उपन्यासों के साथ ही बड़ी संख्या में कहानियां लिखीं। इनमें 'पुरस्कार', 'आकाशदीप', 'आँधी', 'गुंडा' आदि विशेष रूप से लोकप्रिय हुई। 'प्रसाद' जी के निबंधों का संग्रह 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' नाम से प्रकाशित है। शिल्प सभी दृष्टियों से उन्होंने हिंदी नाटक को समृद्ध बनाया। उन्होंने लगभग बारह उनके नाटकों के बारे में हम पिछली इकाई में चर्चा कर चुके हैं। भाषा, भाव, कथा और नाटकों की रचना की जिनमें 'राज्यश्री', 'जनमेजय का नाग यज्ञ', 'विशाख', 'स्कंदगुप्त',

'चंद्रगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' प्रमुख हैं। साहित्य की विविध विधाओं में लेखन करने वाले 'प्रसाद' ने हिंदी साहित्य के बहुमुखी विकास में योगदान दिया। लगभग तीन दशक तक उन्होंने हिंदी साहित्य की सेवा की। हिंदी साहित्य को अपनी अमूल्य कृतियों से वे और भी अधिक समृद्ध बनाते किंतु 15 नवंबर सन् 1937 को मात्र 48 वर्ष की अल्पायु में उनका निधन हो गया।

इस इकाई में प्रस्तुत उनका नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' सन् 1933 ई. में प्रकाशित हुआ था। यह नाटक अपने स्वरूप और संरचना में 'प्रसाद' के अन्य नाटकों से भिन्न है। इसीलिए इसे 'प्रसाद' का विशिष्ट नाट्य प्रयोग माना जाता है। कुछ लोग इसे हिंदी का पहला समस्या नाटक भी मानते हैं।

'ध्रुवस्वामिनी' ऐतिहासिक-सांस्कृतिक नाटक है। इसकी कथा प्राचीन भारतीय इतिहास के गुप्त शासन काल से चुनी गई है। इतिहास की नवीन खोजों के आधार पर पता चला है कि सम्राट समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् थोड़े समय के लिए उनका ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त सम्राट बना था। किंतु शक्ति, सामर्थ्य, पौरुष और विवेक-बुद्धि के अभाव में उसे जल्दी ही सम्राट पद से अपदस्थ होना पड़ा। फिर समुद्रगुप्त का छोटा पुत्र चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य सम्राट बना। रामगुप्त जैसे पतित और गौरवहीन पति से ध्रुवस्वामिनी की मुक्ति तथा चंद्रगुप्त के साथ उसके पुनर्विवाह आदि प्रश्न इस नाटक के मूल आधार हैं।

नाटक की 'सूचना' (भूमिका) में ही लेखक ने स्पष्ट किया है कि उनके कथ्य का आधार विशाखदत्त का नाटक 'देवीचंद्रगुप्त' तथा राजशेखर और बाणभट्ट आदि की रचनाओं में आए संदर्भ हैं। ये संदर्भ नारद, पराशर आदि की स्मृतियों तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित सामाजिक व्यवस्था के आधार पर प्रमाणित होने के कारण इतिहास सम्मत हैं। प्रो. राखालदास बनर्जी, प्रो. अल्तेकर, श्री जायसवाल और श्री भंडारकर आदि इतिहासविदों ने इस पुनर्विवाह को ऐतिहासिक घटना माना है।

आगे आप 'ध्रुवस्वामिनी' का वाचन करेंगे।

27-2 ^/koLokfeuh* ukVd

/koLokfeuh
¼t;'kdj *i:lkn*½

lpuk

विशाखदत्त द्वारा रचित 'देवीचन्द्रगुप्त' नाटक के कुछ अंश 'श्रृंगार-प्रकाश' और 'नाट्य-दर्पण' से सन् 1923 की ऐतिहासिक पत्रिकाओं में जब उद्धृत हुए तब चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के जीवन के संबंध में जो नई बातें प्रकाश में आईं, उनसे इतिहास के विद्वानों में अच्छी हलचल मच गयी। शास्त्रीय मनोवृत्ति वालों को, चन्द्रगुप्त के साथ ध्रुवस्वामिनी का पुनर्लग्न असम्भव, विलक्षण और कुरुचिपूर्ण मालूम हुआ। यहाँ तक कि आठवीं शताब्दी के सज्जन ताम्रपत्र --

> हत्वा भ्रातरमेव राज्यमहरद्देवीं स दनस्तथा
> लक्षं कोटिमलेखनम् किल कलौ दाता स गुप्तान्वयः

के पाठ में सन्देह किया जाने लगा।

किन्तु जिस ऐतिहासिक घटना का वर्णन करते हुए सातवीं शताब्दी में बाणभट्ट ने लिखा है -

> अरिपुरेच परकलत्रकामुकं कामिनीवेश–
> श्चन्द्रगुप्तो शकपतिमशातयत्

और ग्यारहवीं शताब्दी में राजशेखर ने भी लिखा है –

> दत्वारुद्ध गतिं खसाधिपतये देवीं ध्रुवस्वामिनीम्।
> यस्मात् खण्डित साहसो निविवृते श्रीरामगुप्तोनृपः

वह घटना केवल जनश्रुति कह कर नहीं उड़ायी जा सकती।

विशाखदत्त को तो श्री जायसवाल ने चन्द्रगुप्त की सभा का राजकवि और उसके 'देवीचन्द्रगुप्त' को जीवनचित्रण नाटक भी माना है। यह प्रश्न अवश्य ही कुछ कुतूहल से भरा हुआ है कि विशाखदत्त ने अपने दोनों नाटकों का नायक चन्द्रगुप्त नामधारी व्यक्ति को ही क्यों बनाया। परंतु श्री तैलंग ने तो विशाखदत्त को सातवीं शताब्दी के अवन्ति वर्मा का आश्रित कवि माना है। क्योंकि 'मुद्राराक्षस' की किसी प्राचीन प्रति में उन्हें मुद्राराक्षस के भरत वाक्य ''प्रार्थिवश्चन्द्रगुप्तः''

के स्थान पर ''प्रार्थिवोऽवन्तिवर्मा'' भी मिला। विशाखदत्त के आलोचक लोग उसे एक प्रामाणिक ऐतिहासिक नाटककार मानते हैं। उसके लिखे हुए नाटक में इतिहास का अंश कुछ न हो, ऐसा तो नहीं माना जा सकता। राखालदास बनर्जी, प्रोफेसर अल्तेकर और श्री जायसवाल इत्यादि ने, अन्य प्रामाणिक आधार मिलने के कारण ध्रुवस्वामिनी और चंद्रगुप्त के पुनर्लग्न को ऐतिहासिक तथ्य मान लिया है। यह कहना कि रामगुप्त नाम का कोई राजा गुप्तों की वंशावली में नहीं मिलता और न किसी अभिलेख में उसका वर्णन आया है, कोई अर्थ नहीं रखता। समुद्रगुप्त के शासन का उल्लंघन करके, कुछ दिनों तक साम्राज्य में उत्पात मचाकर, जो राजनीति के क्षेत्र में अन्तर्धान हो गया हो; उसका अभिलेख वंशावली में न मिले तो कोई आश्चर्य नहीं। हाँ, भण्डारकरजी तो कहते हैं कि उसके लघु-काल-व्यापी शासन का सूचक सिक्का भी चला था। 'काच' के नाम से प्रसिद्ध गुप्त सिक्के मिलते हैं, वे रामगुप्त के ही हैं। राम के स्थान पर भ्रम से काच पढ़ा जा रहा था। इसलिए बाणभट्ट की वर्णित घटना अर्थात् स्त्री-वेश धारण करके चन्द्रगुप्त पर-कलत्र कामुक शकराज को मारना और ध्रुवस्वामिनी का पुनर्विवाह इत्यादि के ऐतिहासिक सत्य होने में संदेह नहीं रह गया है। और मुझे तो इसका स्वयं चंद्रगुप्त की ओर से एक प्रमाण मिलता है। चंद्रगुप्त के कुछ सिक्कों पर 'रूपकृती' शब्द का उल्लेख है। रूप और आकृति का जॉन एलन् ने खींच-तानकर जो शारीरिक और आध्यात्मिक अर्थ किया है, वह व्यर्थ है। 'रूपकृती' विरुद का उल्लेख करके चंद्रगुप्त अपने उस साहसिक कार्य को स्वीकृति देता है जो ध्रुवस्वामिनी की रक्षा के लिए उसने रूप बदलकर किया है, और जिसका पिछले काल के लेखकों ने भी समय-समय पर समर्थन किया है।

विशाखदत्त के 'देवीचंद्रगुप्त' नाटक का जितना अंश प्रकाश में आया है, उसे देखकर अबुलहसन अली की बर्कमारिस वाली कथा का मिलान करके कई ऐतिहासिक विद्वानों ने शास्त्रीय दृष्टिकोण रखने वाले आलोचकों को उत्तर देते हुए ध्रुवदेवी के पुनर्लग्न को ऐतिहासिक तथ्य तो मान लिया है, किंतु भण्डारकरजी ने पराशर और नारद की स्मृतियों से उस काल की सामाजिक व्यवस्था में पुनर्लग्न होने का प्रमाण भी दिया है। शास्त्रों में अनुकूल और प्रतिकूल दोनों तरह की बातें मिल सकती हैं, परंतु जिस प्रथा के लिए विधि और निशेध दोनों तरह की सूचनायें मिले; तो इतिहास की दृष्टि से वह उस काल में सम्भाव्य मानी जायगी। हाँ, समय-समय पर उनमें विरोध और सुधार हुए होंगे और होते रहेंगे। मुझे तो केवल यही देखना है कि इस घटना की सम्भावना इतिहास की दृष्टि से उचित है कि नहीं।

भारतीय दृष्टिकोण को सुरक्षित रखने वाले विशाखदत्त जैसे पंडित ने जब अपने नाटक में लिखा है—

रम्यांचारतिकारिणीच करुणाशोकेन नीता दशाम्
तत्कालोपगतेन राहुशिरसा गुप्तेव चांद्रीकला।
पत्युः क्लीवजनोचितेन चरितेनानेव पुंसः सतो
लज्जाकोपविपाद भीत्यरतिभिः क्षेत्रीकृता ताम्यते।

तो उस नाटक के संपूर्ण सामने न रहने पर भी, जिससे कि उसके परिणाम का निश्चित पता लगे, उस काल की सामाजिक व्यवस्था का तो अंशतः स्पष्टीकरण हो ही जाता है।

नारद और पराशर के वचन—

अपत्यार्थम् स्त्रियः सृष्टाः स्त्री खेत्रं बीजिनो नराः
क्षेत्रं बीजवते देयं नाबीजी क्षेत्रमर्हति। (नारद)
नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतितै पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते। (पराशर)

के प्रकाश में जब 'देवीचन्द्रगुप्त' नाटक के ऊपर वाले श्लोक का अर्थ किया जाए तो वह घटना अधिक स्पष्ट हो जाती है। रम्या है किन्तु अरतिकारिणी है, में जो श्लेश है, उसमें शास्त्र-व्यवस्था जनित ध्वनि है और पति के क्लीव जनोचित चरित का उल्लेख, साथ-ही-साथ क्षेत्रीकृता-जैसा पारिभाषिक शब्द, नाटककार ने कुछ सोचकर ही लिखा होगा।

भण्डारकर और जायसवाल जी, दोनों ने ही अपने लेखों में विधवा के साथ पुनर्लग्न होने की व्यवस्था मान कर ध्रुवदेवी का पुनर्लग्न स्वीकार किया है। किन्तु स्मृति की ही उक्त व्यवस्था में अन्य पति ग्रहण करने के लिए पाँच आपत्तियों का उल्लेख किया है, उनमें केवल मृत्यु होने

पर ही तो विधवा का पुनर्लग्न होगा। अन्य चार आपत्तियाँ तो पति के जीवन काल में ही उपस्थित होती हैं।

उधर जायसवाल जी चन्द्रगुप्त द्वारा रामगुप्त का वध भी नहीं मानना चाहते, तब 'देवीचन्द्रगुप्त' नाटक की कथा का उपसंहार कैसे हुआ होगा? वैवाहिक विषयों का उल्लेख स्मृतियों को छोड़कर क्या और कहीं नहीं है? क्योंकि स्मृतियों के संबंध में तो यह भी कहा जा सकता है कि वे इस युग के लिए नहीं, दूसरे युग के लिए हैं। परंतु इसी कलियुग के विधान-ग्रंथ आचार्य कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में मुझे स्मृतियों की पुष्टि मिली।

किस अवस्था में एक पति दूसरी स्त्री ग्रहण कर सकता है, इसका अनुसंधान करते हुए, धर्मस्थीय प्रकरण के विवाहसंयुक्त में आचार्य कौटिल्य लिखते हैं–

वर्षाण्यष्टा वप्रजायमानामपुत्राम वंध्यां चाकांक्षेत्
दशविन्दु,
द्वादश कन्या प्रसविनीम्। ततः पुत्रार्थी द्वितीयां विंदेत्।

8 वर्ष तक वन्ध्या, 10 वर्ष विन्दु अर्थात् नश्यत्प्रसूति, 12 वर्ष तक कन्या प्रसविनी की प्रतीक्षा करके पुत्रार्थी दूसरी स्त्री ग्रहण कर सकता है। पुरुषों का अधिकार बताकर स्त्रियों के अधिकार की घोषणा भी उसी अध्याय के अन्त में हैं।

नीचत्वम् परदेशम् वा प्रस्थितो राजकिल्विषी।
प्राणभिहंता पतितस्त्याज्यः क्लीवोऽपिवापतिः।।

इसका मेल पराशर या नारद के वाक्यों से मिलता है। इन्हीं अवस्थाओं में पति को छोड़ने का अधिकार स्त्रियों को था। क्योंकि 'अर्थशास्त्र' में, आगे जो मोक्ष-Divorce का प्रसंग आता है, उसमें न्यायालय सम्भवतः 'अमोक्षा भर्तुरकामस्य द्विषती भार्या भार्यायाश्च भर्ता, परस्परं द्वेषान्मोक्षः' के आधार पर आदेश देता था। किन्तु साधारण द्वेष से भी जहाँ अन्य चार विवाहों में मोक्ष हो सकते थे; वहां धर्म-विवाह में केवल इन्हीं अवस्थाओं में पति त्याज्य समझा जाता था। नहीं तो 'अमोक्षोहि धर्म-विवाहानाम्' के अनुसार धर्म-विवाहों में मोक्ष नहीं होता था। दमयन्ती के पुनर्लग्न की घोषणा भी पति के नष्ट या परदेश प्रस्थित होने पर ही की गयी थी।

जायसवालजी अबुलहसन अली की यह बात नहीं मानते कि चंद्रगुप्त ने रामगुप्त की हत्या की होगी। उनका कहना है कि चंद्रगुप्त तो भरत की तरह बड़े भाई के लिए गद्दी छोड़ चुका था। उनका अनुमान है कि "Very likely, it came about in the form of popular uprising"

अब नाटककार के 'अरतिकारिणी' और 'क्लीव' आदि शब्द घटना के परिणति की क्या सूचना देते हैं, यह विचारणीय है। बहुत संभव है कि अबुलहसन की कथा का आधार 'देवीचन्द्रगुप्त' नाटक ही हो। क्योंकि अबुलहसन के लिखने के पहले उक्त नाटक का होना माना जा सकता है।

यह ठीक है कि हमारे आचार और धर्मशास्त्र की व्यावहारिकता की परम्परा विच्छिन्न-सी है। आगे जितने सुधार या समाजशास्त्र के परीक्षात्मक प्रयोग देखे या सुने जाते हैं, उन्हें अचिन्तित और नवीन समझ कर हम बहुत शीघ्र अभारतीय कह देते हैं, किंतु मेरा ऐसा विश्वास है कि प्राचीन आर्यावर्त्त ने समाज की दीर्घकालव्यापिनी परंपरा में प्रायः प्रत्येक विधान का परीक्षात्मक प्रयोग किया है। तात्कालिक कल्याणकारी परिवर्तन भी हुए हैं। इसलिए डेढ़ हजार वर्ष पहले यह होना अस्वाभाविक नहीं था। क्या होना चाहिए और कैसा होगा, यह तो व्यवस्थापक विचार करें; किंतु इतिहास के आधार पर जो कुछ हो चुका या जिस घटना के घटित होने की सम्भावना है, उसी को लेकर इस नाटक की कथावस्तु का विकास किया गया है।

भण्डारकरजी का मत है कि यह युद्ध गोमती की घाटी में अल्मोड़ा जिले के कार्तिकेयरपुर के समीप हुआ। जायसवालजी का मत है कि यह युद्ध 374 ई. से लेकर 380 ई. के बीच में काँगड़ा जिले के अबिवाल स्थान में हुआ था, जहाँ कि प्रथम सिक्ख-युद्ध भी हुआ था।

प्रयाग की प्रशस्ति में समुद्रगुप्त की साम्राज्य-नीति में विजित राजाओं के आत्म-निवेदन 'कन्योपायन दान' ग्रहण करने का उल्लेख है। मैंने ध्रुवस्वामिनी के गुप्तकुल में आने का यही कारण माना है।

विशाखदत्त ने ध्रुवदेवी नाम लिखा है; किंतु मुझे ध्रुवस्वामिनी नाम जो राजशेखर के मुक्तक में आया है, स्त्रीजनोचित, सुंदर, आदर-सूचक और सार्थक प्रतीत हुआ। इसीलिए मैंने उसी का व्यवहार किया है।

THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ik= ifjp;

चंद्रगुप्त
रामगुप्त
शिखरस्वामी
पुरोहित
शकराज
खिंगल
मिहिरदेव
ध्रुवस्वामिनी
मंदाकिनी
कोमा
सामंत कुमार, शक-सामंत, प्रतिहारी,
प्रहरी, दासी, कुबड़ा, बौना, हिजड़ा,

iFke vd

(f'kfoj का पिछला भाग, जिसके पीछे पवर्तमाला की ikphj है, शिविर का एक कोना दिखलाई दे रहा है। जिससे सटा हुआ pnkri टँगा है। मोटी-मोटी रेशमी डोरियों से सुनहले काम के परदे खम्भों से बँधे हैं। दो-तीन सुन्दर मंच रक्खे हुए हैं। चन्द्रातप और पहाड़ी के बीच छोटा-सा dt : पहाड़ी पर से एक पतली जलधारा उस हरियाली में बहती है। झरने के पास शिलाओं से चिपकी हुई लता की डालियाँ पवन में हिल रही हैं। दो-चार छोटे-बड़े वृक्ष, जिन पर फलों से लदी हुई सेवती की लता छोटा-सा झुरमुट बना रही है। शिविर के कोने से ध्रुवस्वामिनी का प्रवेश। पीछे-पीछे एक लम्बी और कुरूप स्त्री चुपचाप नंगी तलवार लिए आती है।)

ध्रुवस्वामिनी - ¼lkeu iolr dh vkj ns[k dj½ सीधा तना हुआ, अपने iHkRo की साकार कठोरता, vHkHknh mUeDr शिखर! और इन क्षुद्र कोमल fujhg लताओं और पौधों को इसके चरण में लौटना ही चाहिए न! ¼lkFkokyh [kMx/kkfj.kh dh vkj ns[kdj½ क्यों, मंदाकिनी नहीं आई? ¼og mÙkj ugh nrh g½ बोलती क्यों नहीं? यह तो मैं जानती हूँ, कि इस राजकुल के अन्तःपुर में मेरे लिए न जाने कब से नीरव अपमान lf´pr रहा, जो मुझे आते ही मिला; किंतु क्या तुम-जैसी दासियों से भी वही मिलेगा? इसी भौलमाला की तरह मौन रहने का अभिनय तुम न करो, बोलो! ¼og nkr fudkydj fou; idV djrh gb dN vkj vkx c<u dk ldr djrh g½ अरे, यह क्याः मेरे भाग्य विधाता! यह कैसा bUnzt ky ml fnu jktegkijkfgr u dN vkgfr;k d ckn e> tk vk'khokn fn;k Fkk] D;k og vfHk'kki Fkk\ bl jktdh; vUr%ij में सब जैसे एक रहस्य छिपाये हुये चलते बोलते हैं और मौन हो जाते हैं; ¼[kMx/kkfj.kh foo'krk vkj Hk; dk vfHku; djrh gb vkx c<u dk ldr djrh g½ तो क्या तुम मूक हो? तुम कुछ बोल न सको, मेरी बातों का उत्तर भी न दो, इसलिए तुम मेरी सेवा में नियुक्त की गयी हो? यह असह्य है। इस राजकुल में एक भी संपूर्ण मनुष्यता का fun'ku न मिलेगा क्या? जिधर देखो कुबड़े, बौने, हिजड़े, गूँगे और बहरे। ¼fp<rh gb /kzoLokfeuh vkx c<dj >ju d fdukj cB tkrh g] [kMx/kkfj.kh Hkh b/kj-m/kj ns[kdj /kzoLokfeuh d ijk d leh i cBrh g½

खड्गधारिणी-¼l'kd pkjk vkj ns[krh gb½ देवि, प्रत्येक स्थान और समय बोलने के योग्य नहीं होता, कभी-कभी मौन रह जाना बुरी बात नहीं है। मुझे अपनी दासी समझिए। vojk/k के भीतर मैं गूँगी हूँ। यहाँ lfnX/k न रहने के लिए मुझे ऐसा ही करना पड़ता है।

ध्रुवस्वामिनी : अरे, तो क्या तुम बोलती भी हो? पर यह तो कहो, यह कपट-आवरण किस लिए?

शिविरःसेना के ठहरने के लिए लगाया गया तंबू; प्राचीरःपरकोटा, चहारदीवारी; चंद्रातपःचाँदनी, वितान (धूप, तेज हवा आदि से बचने के लिए छत की तरह ताना गया मोटा कपड़ा। आजकल इसका इस्तेमाल सार्वजनिक समारोहों में शामियाने के ऊपर किया जाता है); कुंजःबगीचा; प्रभुत्वःस्वामित्व, गौरव; अभ्रभेदीःगगनचुंबी; उन्मुक्तःबंधन रहित, स्वतंत्रः; निरीहःइच्छारहित, उदासीन, चेष्टा रहित; सञ्चितःइकट्ठा किया हुआ, जमा किया हुआ; इन्द्रजालः जादू; अन्तःपुरःराजमहल का जनानाखाना, हरम; निदर्शनःउदाहरण; अवरोधःरुकावट; संदिग्धः संदेहपूर्ण।

खड्गधारिनी : एक पीड़ित की प्रार्थना सुनाने के लिए। कुमार चन्द्रगुप्त को आप भूल न गयी होंगी।

ध्रुवस्वामिनी : ¼mRd.Bk ls½ वही न, जो मुझे बन्दिनी बनाने के लिए गए थे।

खड्गधारिणी : ¼nkrrk ls thHk nckdj½ यह आप क्या कह रही है, उनको तो स्वयम् अपने भीषण भविष्य का पता नहीं। प्रत्येक क्षण उनके प्राणों पर सन्देह करता है। उन्होंने पूछा है कि मेरा क्या अपराध है।

ध्रुवस्वामिनी : ¼mnklh dh eLdjkgV ds lkFk½ अपराध!? मैं क्या बताऊँ! तो क्या कुमार भी बन्दी हैं?

खड्गधारिणी : कुछ-कुछ वैसा ही है देवि! राजाधिराज से कहकर क्या आप उनका कुछ उपकार कर सकेंगी।

ध्रुवस्वामिनी : भला मैं क्या कर सकूँगी? मैं तो अपने ही प्राणों का मूल्य नहीं समझ पाती। मुझ पर राजा का कितना vuqxzg है, यह भी मैं आज तक न जान सकी, मैंने तो कभी उनका मधुर lEHkk"k.k सुना ही नहीं। विलासिनियों के साथ मदिरा में mUeÙk] उन्हें अपने आनन्द से अवकाश कहाँ!

खड्गधारिणी : तब तो vn"V ही कुमार के जीवन का सहायक होगा। उन्होंने पिता का दिया हुआ LoRo और राज्य का अधिकार तो छोड़ ही दिया; इसके साथ अपनी एक अमूल्य fuf/k भी। ¼dgrs-dgrs lglk #d tkrh g½

ध्रुवस्वामिनी : अपनी अमूल्य निधि! वह क्या?

खड्गधारिणी : वह अत्यन्त गुप्त है देवि, किन्तु मैं प्राणों की भीख माँगती हुई कह सकूँगी।

ध्रुवस्वामिनी : ¼dN lkspdj½ तो जाने दो, छिपी हुई बातों से मैं घबरा उठी हूँ। हाँ, मैंने उन्हें देखा था, वह fujHkz izkph का cky-v#.k!आह! jkt-pØ सबको पीसता है, पिसने दो, हम fuLlgk;ksa को और दुर्बलों को पिसने दो।

खड्गधारिणी : देवि, वह oYyjh जो झरने के समीप पहाड़ी पर चढ़ गई है, उसकी नन्हीं-नन्हीं पत्तियों को ध्यान से देखने पर आप समझ जाएंगी कि वह काई की जाति की है। प्राणों की क्षमता बढ़ा लेने पर वही काई जो fcNyu बन कर गिरा सकती थी, अब दूसरों के ऊपर चढ़ने का voyEc बन गई हैं।

ध्रुवस्वामिनी : ¼vkdk'k dh vksj ns[kdj½ वह, बहुत दूर की बात है। आह, कितनी कठोरता है! मनुष्य के हृदय में देवता को हटाकर राक्षस कहाँ से घुस आता है? कुमार की fLuX/k सरल, और सुन्दर मूर्ति को देखकर कोई भी प्रेम से iqyfdr हो सकता हैं किंतु, उन्हीं का भाई? आश्चर्य?

खड्गधारिणी : कुमार को इतने में ही सन्तोष होगा कि उन्हें कोई विश्वासपूर्वक स्मरण कर लेता है। रही vH;qn; की बात, सो तो उनको अपने बाहु-बल और भाग्य पर ही विश्वास है।

ध्रुवस्वामिनी : किंतु उन्हें कोई ऐसा साहस का काम न करना चाहिए जिसमें उनकी परिस्थिति और भी भयानक हो जाय।

¼[kM~x/kkfj.kh [kM+h gksrh g½

—अच्छा, तो अब तू जा और अपने मौन संकेत से किसी दासी को यहाँ भेज दे। मैं अभी यहीं बैठना चाहती हूँ।

¼[kM~x/kkfj.kh ueLdkj djds tkrh gSA vkSj ,d nklh dk izos'k½

दासी : ¼gkFk tksM+dj½ देवि, सायंकाल हो चला है। वनस्पतियाँ शिथिल होने लगी हैं। देखिए न 0;kse-fogkjh पक्षियों का झुण्ड भी अपने uhM+ksa में प्रसन्न dksykgy से लौट रहा है। क्या भीतर चलने की अभी इच्छा नहीं है?

ध्रुवस्वामिनी : चलूँगी क्यों नहीं? किंतु मेरा नीड़ कहाँ? यह तो Lo.kZ-fitj है।

उत्कण्ठाःउत्सुकता; अनुग्रहःकृपा; सम्भाषणःबातचीत; उन्मत्तःनशे में चूर; अदृष्टः भाग्य, नियति; स्वत्वः स्वामित्व; निधिःख़जाना (अमूल्य निधि-बहुत ही महत्त्वपूर्ण वस्तु); निरभ्रः मेघरहित, जिसमें बादल न हो; प्राचीः पूरब; बाल-अरुणः सुबह का सूरज, अभी-अभी निकला सूरज; राज-चक्रः शासन; निस्सहायों : जिसका कोई नहीं; वल्लरीः बेल, लता; बिछलन : फिसलन; अवलम्बः सहारा; स्निग्धः स्नेहपूर्ण; पुलकितःप्रेम या हर्ष से रोमांच होना (रोएं उभर आना); अभ्युदयःउन्नति, समृद्धि, मनोरथ की पूर्ति; व्योम्-विहारीः आकाश में उड़ने वाले; नीड़ोंःघोंसलों; कोलाहलःशोर; स्वर्ण-पिंजरःसोने का पिंजरा।

¼d#.k Hkko ls mBdj nklh dk dU/kk ij gkFk j[kdj pyus dk m|r gksrh gSA uiF; esa dksykgy - *egknsoh* dgka gS] mUgsa dkSu cqykus xbZ g\½

ध्रुवस्वामिनी : हैं-हैं, यह उतावली कैसी?

प्रतिहारी : (iko'k djds ?kcjkgV ls½ HkVVkjd इधर आए हैं क्या?

ध्रुवस्वामिनी : ¼O;X; ls eLdjkrh gbZ½ मेरे अंचल में तो छिपे नहीं है। देखो किसी कुंज में ढूँढो।

प्रतिहारी : ¼lEHkzje ls½ अरे महादेवी, क्षमा कीजिए। युद्ध संबंधी एक आवश्यक संवाद देने के लिए महाराज को खोजती हुई मैं इधर आ गई हूँ।

ध्रुवस्वामिनी : होंगे कहीं, यहां तो नहीं हैं।

¼mnkl Hkko ls nklh ds lkFk /kzoLokfeuh dk iLFkkuA nljh vksj ls [kM+x/kkfj.kh dk iqu% iko'k vkSj djt e ls viuk mÙkjh; lEHkkyrk gqvk jkexqIr fudy dj ,d ckj *ifrgkjh* dh vksj fQj [kM+x/kkfj.kh dh vksj n[krk g½

प्रतिहारी : जय हो देव! एक चिन्ताजनक समाचार निवेदन करने के लिए vekR; ने मुझे भेजा है।

रामगुप्त : ¼>q>yk dj½ चिन्ता करते-करते देखता हूँ कि मुझे मर जाना पड़ेगा! ठहरो ¼[kM+x/kkfj.kh ls½ हाँ जी, तुमने अपना काम तो अच्छा किया, किन्तु मैं समझ न सका कि चन्द्रगुप्त को वह अब भी प्यार करती है या नहीं?

¼[kM+x/kkfj.kh ifrgkjh dh vksj n[kdj pqi jg tkrh g½

रामगुप्त : ¼ifrgkjh dh vksj Øks/k ls n[krk gqvk½ तुमसे मैंने कह न दिया कि अभी मुझे अवकाश नहीं, ठहर कर आना।

प्रतिहारी : राजाधिराज! शकों ने किसी पहाड़ी राह से उतर कर नीचे का fxfj-iFk रोक लिया है। हम लोगों के शिविर का संबंध jkt-iFk से छूट गया है। शकों ने दोनों ही ओर से घेर लिया है।

रामगुप्त : दोनों ओर से घिरा रहने में शिविर और भी सुरक्षित है। मूर्ख! चुप रह ¼[kM+x/kkfj.kh ls½ ध्रुवदेवी, क्या मन-ही-मन चन्द्रगुप्त को;;;;; है न मेरा संदेह ठीक?

प्रतिहारी : ¼gkFk tksMdj½ अपराध क्षमा हो देव! अमात्य, ;q)-ifj"kn~ में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

रामगुप्त : ¼ân; ij gkFk j[kdj½ युद्ध तो यहाँ भी चल रहा है, देखता नहीं जगत् की अनुपम सुन्दरी मुझसे स्नेह नहीं करती और मैं हूँ इस देश का jktkf/kjkt!

प्रतिहारी : महाराज, शकराज का सन्देश लेकर एक दूत भी आया है।

रामगुप्त : आह! किंतु ध्रुवदेवी! उसके मन में टीस है ¼dqN lkspdj½ जो स्त्री दूसरे के शासन में रहकर और प्रेम किसी अन्य पुरुष से करती है; उसमें एक गंभीर और व्यापक रस m}syr रहता होगा। वही तो नहीं, जो चंद्रगुप्त से प्रेम करेगी वह स्त्री न जाने कब चोट कर बैठे? भीतर-भीतर न जाने कितने dqpØ घूमने लगेंगे। ¼[kM+x/kkfj.kh ls½ सुना न, ध्रुवदेवी से कह देना चाहिए कि वह मुझे और मुझसे ही प्यार करे। केवल egknsoh बन जाना ठीक नहीं।

¼[kM+x/kkfj.kh dk ifrgkjh ds lkFk iLFkku vkSj f'k[kjLokeh dk izo'k½

शिखरस्वामी : कुछ आवश्यक बातें करनी हैं देव!

रामगुप्त : ¼fpUrk ls mxyh fn[kkrs gq,] tSls viuk-vki cksyrs dj jgk gk½ ध्रुवदेवी को लेकर क्या lkezkT; से भी हाथ धोना पड़ेगा! नहीं तो फिर? ¼dqN lkpus yxrk g½ ठीक तो, lglk मेरे राजदण्ड ग्रहण कर लेने से पुरोहित, अमात्य और सेनापति लोग छिपा हुआ विद्रोह-भाव रखते हैं।

भट्टारकःराजा; प्रतिहारीःद्वारपाल का काम करने वाली स्त्री; अमात्यःमंत्री; गिरि-पथःदर्रा, पर्वतों के बीच का तंग रास्ता; राज-पथःमुख्य सड़क, राजमार्ग; युद्ध-परिषदःयुद्ध संबंधी विचार करने वाली सभा; राजाधिराजःराजाओं का राजा; उद्वेलितःछलकना; कुचक्रःषड्यंत्रः; महादेवीःराजा की प्रधान पत्नी, पटरानी; साम्राज्यःवह राज्य जिसके अधीन बहुत से देश हों और जिसमें किसी एक सम्राट का शासन हो; सहसाः अचानक, एकाएक।

¼f'k[kj ls½ है न? केवल एक तुम्हीं मेरे विश्वासपात्र हो। समझा न? यही गिरि-पथ सब झगड़ों का अंतिम निर्णय करेगा। क्यों अमात्य, जिसकी भुजाओं में बल न हो, उसके मस्तिष्क में तो कुछ होना चाहिए?

शिखरस्वामी : ¼,d i= ndj½ पहले इसे पढ़ लीजिए। ¼jkex|r i= i<r t|l vk'p;l l pkd mBrk g½A चौंकिए मत, यह घटना इतनी आकस्मिक है कि कुछ सोचने का अवसर नहीं मिलता।

रामगुप्त : ¼Bgj dj½ है तो ऐसा ही; किंतु एक बार ही मेरे ifrdy भी नहीं मुझे इसकी सम्भावना पहले से भी थी।

शिखरस्वामी : ¼vk'p;l l½ ऐं? तब तो महाराज ने अवश्य ही कुछ सोच लिया होगा। e?kl dy आकाश की तरह जिसका भविष्य घिरा हो, उसकी बुद्धि को तो बिजली के समान चमकना ही चाहिए।

रामगुप्त : ¼l'kd½ कह दूँ! सोचा तो है मैंने; परंतु क्या तुम उसका समर्थन करोगे?

शिखरस्वामी : यदि uhfr-;Dr हुआ तो अवश्य समर्थन करूँगा। सबके विरुद्ध रहने पर भी स्वर्गीय आर्य समुद्रगुप्त की आज्ञा के प्रतिकूल मैंने ही आपका समर्थन किया था। नीति-सिद्धांत के आधार पर ज्येष्ठ राजपुत्र को।

रामगुप्त : ¼ckr dkV dj½ वह तो-वह तो मैं जानता हूँ, किंतु इस समय जो प्रश्न सामने आ गया है, उस पर विचार करना चाहिए। यह तुम जानते हो कि मेरी इस विजय-यात्रा का कोई गुप्त उद्देश्य है। उसकी सफलता भी सामने दिखाई पड़ रही है। हाँ, थोड़ा-सा साहस चाहिए।

शिखरस्वामी : वह क्या?

रामगुप्त : शक-दूत संधि के लिए जो प्रमाण चाहता हो, उसे अस्वीकार न करना चाहिए। ऐसा करने में इस संकट के बहाने जितना विरोधी प्रकृति है उस सबको हम लोग सहज में ही हटा सकेंगे।

शिखरस्वामी : भविष्य के लिए यह चाहे अच्छा हो; किंतु इस समय तो हम लोगों को बहुत-से विघ्नों का सामना करना पड़ेगा।

रामगुप्त : ¼gl dj½ तब तुम्हारी बुद्धि कब काम में आएगी? और हाँ, चंद्रगुप्त के मनोभाव का कुछ पता लगा?

शिखरस्वामी : कोई नयी बात तो नहीं।

रामगुप्त : मैं देखता हूँ कि मुझे पहले अपने अन्तःपुर के ही विद्रोह का दमन करना होगा। ¼fu'okl ydj½ ध्रुवदेवी के हृदय में चंद्रगुप्त की आकांक्षा धीरे-धीरे जाग रही है।

शिखरस्वामी : यह असम्भव नहीं; किंतु महाराज! इस समय आपको दूत से lk{kkr djd उपस्थित राजनीति पर ध्यान देना चाहिए। यह एक विचित्र बात है कि प्रबल पक्ष संधि के लिए प्रस्ताव भेजें।

रामगुप्त : विचित्र हो चाहे सचित्र, अमात्य, तुम्हारी राजनीतिज्ञता इसी में है कि भीतर और बाहर के सब शत्रु एक ही चाल में परास्त हों। तो चलो।

¼nkuk dk iLFkku! eUnkfduh dk l'kd Hkko l io'k½

मन्दाकिनी : ¼pkjk vkj n[k dj½ भयानक समस्या है। मूर्खों ने स्वार्थ के लिए साम्राज्य के गौरव का सर्वनाश करने का निश्चय कर लिया है! सच है, वीरता जब भागती है, तब उसके पैरों से राजनीतिक Ny-Nn की धूल उड़ती है। ¼dN lkpdj½ कुमार चंद्रगुप्त को यह सब समाचार शीघ्र ही मिलना चाहिए। गूँगी के अभिनय में महादेवी हृदय का आवरण तनिक-सा हटा है, किंतु वह थोड़ा-सा स्निग्ध भाव भी कुमार के लिए कम महत्त्व नहीं रखता। कुमार चन्द्रगुप्त! कितना समर्पण का भाव है उसमें? और उसका बड़ा भाई रामगुप्त! कपटाचारी रामगुप्त! जी करता है इस dyf"kr वातावरण से कहीं दूर, foLe`r में अपने छिपा लूँ। पर मन्दा! तुझे fo/kkrk ने क्यों बनाया? ¼lkpu yxrh g½ नहीं, मुझे हृदय कठोर करके अपना कर्त्तव्य करने के लिए यहाँ रुकना होगा। न्याय का दुर्बल पक्ष ग्रहण करना होगा।

प्रतिकूलःखिलाफ़, विपरीत, विरुद्ध; मेघसंकुलःबादलों से घिरे हुए; नीति-युक्तःशासन की पद्धति के उपयुक्त; साक्षात करकेःमिलकर; छल-छंदःछल-कपट; कलुषितःदूषित, गंदा; विस्मृतःभूल जाना;विधाताःईश्वर, सृष्टा।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

¼xkrh g½

यह कसक अरे आसूँ सह जा।
बनकर विनम्र अभिमान मुझे
मेरा अस्तित्व बता, रह जा।
बन प्रेम छलक कोने-कोने
अपनी नीरव गाथा कह जा।
करुणा बन दुखिया वसुधा पर
शीतलता फैलाता बह जा।

¼tkrh gA /kqoLokfeuh dk mnkl Hkko ls /khjs-/khjs ioZ'k½ ihNs ,d *ifjpkfjdk* iku dk fMCck vkSj nwljh pej fy, vkrh gA /kqoLokfeuh ,d eap ij cSBdj v/kjksa ij maxyh j[kdj dqN lkspus yxrh gS vkSj pej/kkfj.kh pej pykus yxrh g½

धुवस्वामिनी : ¼nwljh ifjpkfjdk ls½ हाँ, क्या कहा! शिखरस्वामी कुछ कहना चाहते हैं? कह दो कल सुनूँगी, आज नहीं।

परिचारिका : जैसी आज्ञा। तो मैं कह आऊँ कि अमात्य से कल महादेवी बातें करेंगी?

धुवस्वामिनी : ¼dqN lkspdj½ ठहरो तो, वह गुप्त साम्राज्य का अमात्य है, उससे आज ही भेंट करना होगा। हाँ, यह तो बताओ, तुम्हारे राजकुल में नियम क्या है? पहले अमात्य की मन्त्रणा सुननी पड़ती है, तब राजा से भेंट होती है?

परिचारिका : ¼nk¡rksa ls thHk nckdj½ ऐसा नियम तो मैंने नहीं सुना। यह युद्ध-शिविर है न? परमभट्टारक को अवसर न मिला होगा। महादेवी! आपको सन्देह न करना चाहिए।

धुवस्वामिनी : मैं महादेवी ही हूँ न? यदि यह सत्य है तो क्या तुम मेरी आज्ञा से कुमार चंद्रगुप्त को यहाँ बुला सकती हो? मैं चाहती हूँ कि अमात्य के साथ ही कुमार से भी कुछ बातें कर लूँ।

परिचारिका : क्षमा कीजिए, इसके लिए तो पहले अमात्य से पूछना होगा।

¼/kqoLokfeuh Øks/k ls mldh vksj ns[kus yxrh gS vkSj og iku dk fMCck j[k dj pyh tkrh gSA ,d ckSuk dk dqcM+s vkSj fgtM+s ds lkFk ioZ'k½

कुबड़ा : युद्ध! भयानक युद्ध!

बौना : हो रहा है कि कहीं होगा मित्र!

हिजड़ा : बहनो, यहीं युद्ध करके दिखाओ न, महादेवी भी देख लें।

बौना : ¼dqcM+s ls½ सुनता है रे! तू अपना fgekpy इधर कर दे - मैं fnfXot; करने के लिए dqcsj पर चढ़ाई करूँगा।

¼mlds dqcM+ dks nckrk gS vkSj dqcM+k viuh ?kqVuksa vkSj gkFkksa ds cy cSB tkrk gSA fgtM+k dqcM+s dh ihB ij cSBrk gSA ckSuk ,d *eksNZy* ysdj ryokj dh rjg mls ?kekus yxrk g½

हिजड़ा : अरे! यह तो मैं हूँ uy-dqcj की वधू! दिग्विजयी वीर, क्या तुम स्त्री से युद्ध करोगे? लौट जाओ, कल आना। मेरे भवसुर और vk;Zi= दोनों ही moZ'kh और jEHkk के अभिसार से अभी नहीं आये। कुछ आज ही तो युद्ध करने का शुभ मुहूर्त नहीं है।

बौना : ¼eksNZy ls iVk ?kqek;k gqvk½ नहीं; आज ही युद्ध होगा। तुम स्त्री नहीं हो, तुम्हारी उँगलियाँ तो मेरी तलवार से भी अधिक चल रही हैं। कूबड़ तुम्हारे नीचे है। तब मैं कैसे मान लूँ कि तुम न तो नल-कूबर हो और न कूबेर! तुम्हारे वस्त्रों से मैं धोखा न खा जाऊँगा। तुम पुरुष हो, युद्ध करो!

हिजड़ा : ¼mlh rjg eVdrs gq,½ अरे मैं स्त्री हूँ। बहनो, कोई मुझसे ब्याह भले ही कर सकता है, लड़ाई मैं क्या जानूँ।

परिचारिका:सेविका; हिमाचल:हिमाचल (व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग। 'कूबड़' के लिए 'हिमाचल' शब्द प्रयुक्त हुआ है); दिग्विजय:वीरता दिखलाने और महत्त्व स्थापित करने के उद्देश्य से राजाओं का अपनी सेना लेकर निकल पड़ना और अन्य राजाओं को हरा कर चारों दिशाओं में अपना साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास; कुबेर:धन और समृद्धि के देवता; मोर्छल:मोर के पंखों का चमर; नल-कूबर:कुबेर का पुत्र; आर्यपुत्र:प्राचीन समय में स्त्रियों द्वारा पतियों के लिए प्रयुक्त संबोधन; उर्वशी:इंद्रलोक की प्रसिद्ध अप्सरा; रम्भा:एक अन्य अप्सरा।

शिखरस्वामी : महादेवी की जय हो!

¼nljh vkj l: ,d ;orh nklh d: d/k dk lgkjk fy, dN-dN efnjk d: u'k e: jkexlr dk io'kA eLdjkrk gvk cku dk [ky n[ku yxrk gA /koLokfeuh mBdj [kMh gk tkrh g vkj f'k[kjLokeh jkexlr dk ldr djrk g½

रामगुप्त : ¼dN Hkjk;: g, d.B l½ महादेवी की जय हो!

ध्रुवस्वामिनी : स्वागत महाराज!

¼jkexlr ,d ep ij cB tkrk g vkj f'k[kjLokeh /koLokfeuh d: bl mnklhu f'k"Vkpkj l: pfdr gkdj flj [kt yku yxrk g½

कुबड़ा : दोहाई राजाधिराज की! मुझ हिमालय का कूबड़ दुखने लगा। न तो यह नल-कूबर की वधू मेरे कूबर से उठती है ओर न तो यह बौना मुझे विजय ही कर लेता है।

रामगुप्त : ¼g lr g,½ वाह रे वामन वीर! यहाँ दिग्विजय का नाटक खेला जा रहा है क्या?

बौना : ¼vdMdj½ okeu[6] के बलि-विजय की गाथा और तीन पगों की महिमा सब लोग जानते हैं। मैं भी तीन लात में इसका कूबर सीधा कर सकता हूँ।

कुबड़ा : लगा दे भाई बौना! फिर यह अचल gedV बनना तो छूट जाय।

हिजड़ा : देखो जी, मैं नल-कूबर की वधू इस पर बैठी हूँ।

बौना : झूठ! युद्ध के डर से पुरुष होकर भी यह स्त्री बन गया है।

हिजड़ा : मैं तो पहले ही कह चुकी कि मैं युद्ध करना नहीं जानती।

बौना : तुम नल-कूबर की स्त्री हो न, तो अपनी विजय का उपहार समझ कर मैं तुम्हारा हरण कर लूँगा। ¼vkj ykxk dh vkj n[kdj mldk gkFk idM dj [khprk gvk½ ठीक होगा न? कदाचित् यह धर्म के विरुद्ध न होगा।

¼jkexlr BBkdj glu yxrk g½

ध्रुवस्वामिनी : ¼Øk/k l dMd dj½ निकलो! अभी निकलो, यहाँ ऐसी निर्लज्जला का नाटक मैं नहीं देखना चाहती। ¼f'k[kjLokeh dh vkj Hkh lØk/k n[krh gA f'k[kj d: ldr djus ij o: lc Hkkx tkr: g½

रामगुप्त : अरे, ओ दिग्विजयी! सुन तो ¼mB dj rkyh ihVrk gvk glu yxrk gA /koLokfeuh {kkHk vkj ?k.kk l: eg Qj yrh gA f'k[kjLokeh d: ldr l: nklh efnjk dk ik= y: vkrh g] ml: n[kdj illurk l: vk[k QkM dj f'k[kj dh vkj viuk gkFk c<k nrk g½ अमात्य, आज ही महादेवी के पास मैं आया और आप भी पहुँच गये, यह एक विलक्षण घटना है। है न? ¼ik= ydj ihrk g½

शिखरस्वामी : देव, मैं इस समय एक आवश्यक कार्य से आया हूँ।

रामगुप्त : ओह, मैं तो भूल ही गया था! वह बर्बर शकाराज क्या चाहता है? मैं आक्रमण न करूँ, इतना ही तो? जाने दो, युद्ध कोई अच्छी बात तो नहीं!

शिखरस्वामी : वह और भी कुछ चाहता है।

रामगुप्त : क्या कुछ सहायता भी माँग रहा है?

शिखरस्वामी : ¼flj >dk dj xEHkhjrk l½ नहीं देव, वह बहुत ही vlxr और अशिष्ट ;kpuk कर रहा है।

रामगुप्त : क्या? कुछ कहो भी।

शिखरस्वामी : क्षमा हो महाराज! दूत तो vo/; होता है; इसलिए उसका सन्देश सुनना ही पड़ा। वह कहता था कि शकराज से महादेवी ध्रुवस्वामिनी का ¼#d dj /koLokfeuh dh vkj n[ku yxrk gA /koLokfeuh flj fgyk dj

---

वामनःबौना आदमी, विष्णु का वामनावतार; हेमकूटः हिमालय के उत्तर का एक पर्वत; सक्रोधः क्रोध से; असंगतः अनुचित; याचनाः माँगना; अवध्यः वध के अयोग्य (दूत का वध नहीं किया जाता)।

fVIi.kh½ वामनावतार की कथा-राजा बलि ने जब इंद्रादि देवों को परास्त करके स्वर्ग पर अधिकार कर लिया तो वे सहायता के लिए विष्णु के पास गये। विष्णु वामन (बौने) के अवतार के रूप में राजा बलि के पास गये और उनसे तीन पग भूमि दान में माँगी। दो पगों में उन्होंने सारी पृथ्वी को नाप लिया और कहा कि तीसरे पग के लिए भूमि कहाँ है तब राजा बलि ने उन्हें स्वयं अपना शरीर अर्पित किया और वामन ने तीसरा पग बढ़ा कर बलि के सिर पर रखा। इस तरह बलि का दर्प दलन किया। बलि की विनम्रता और दानशीलता पर प्रसन्न होकर उन्हें इंद्र बनने का आशीर्वाद दिया।

dgus dh vkKk nsrh gS½ विवाह-सम्बन्ध fLFkj हो चुका था, बीच में ही आर्य समुद्रगुप्त की विजय यात्रा में महादेवी के पिता जी ने उपहार में गुप्तकुल में भेज दिया, इसलिए महादेवी को वह।

रामगुप्त : ऐं, क्या कहते हो अमात्य? क्या वह महादेवी को मांगता है।

शिखरस्वामी : हाँ देव! साथ ही वह अपने lkeUrksa के लिए मगध के सामन्तों की स्त्रियों को माँगता है।

रामगुप्त : ¼'okl ysdj½ ठीक ही है, जब उसके यहाँ सामन्त हैं, तब उन लोगों के लिए भी स्त्रियाँ चाहिए। हां, क्या यह सच है कि महादेवी के पिता ने शकराज से इनका सम्बन्ध स्थिर कर लिया था?

शिखरस्वामी : यह तो मुझे नहीं मालूम?

¼/kzqoLokfeuh jks"k ls Qwyrh gqbZ Vgyus yxrh gS½

रामगुप्त : महादेवी, अमात्य क्या पूछ रहे हैं?

ध्रुवस्वामिनी : इस प्रथम सम्भाषण के लिए मैं कृतज्ञ हुई महाराज! किन्तु मैं भी यह जानना चाहती हूँ कि गुप्त-साम्राज्य क्या L=h-lEiznku से ही बढ़ा है?

रामगुप्त : ¼>sidj galrk gqvk½ हें-हें-हें, बताइए अमात्य जी!

शिखरस्वामी : मैं क्या कहूँ? शत्रु-पक्ष का यही सन्धि-संदेश है। यदि स्वीकार न हो तो युद्ध कीजिए। शिविर दोनों ओर से घिर गया है। उसकी बातें मानिये, या मर कर भी अपनी कुल-मर्यादा की रक्षा कीजिए। दूसरा कोई उपाय नहीं।

रामगुप्त : ¼pkSddj½ क्या प्राण देने के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं? ऊँहूँ, तब तो महादेवी से पूछिए।

ध्रुवस्वामिनी : ¼rhoz Loj ls½ और आप लोग, कुबड़ों, बौनों और नपुंसकों का नृत्य देखेंगे। मैं जानना चाहती हूँ किसने सुख-दुख में मेरा साथ न छोड़ने की प्रतिज्ञा vfXu-osnh के सामने की है?

रामगुप्त : ¼pkjks vksj ns[kdj½ किसने की है, कोई बोलता क्यों नहीं?

ध्रुवस्वामिनी : तो क्या मैं राजाधिराज रामगुप्त की महादेवी नहीं हूँ?

रामगुप्त : क्यों नहीं? परन्तु रामगुप्त ने ऐसी कोई प्रतिज्ञा न की होगी। मैं तो उस दिन nzk{kklo में डुबकी लगा रहा था। पुरोहितों ने न जाने क्या-क्या पढ़ दिया होगा। उन सब बातों का बोझ मेरे सिर पर! ¼flj fgykdj½ कदापि नहीं।

ध्रुवस्वामिनी : ¼fuLlgk; gksdj ghurk ls f'k[kjLokeh dh vksj½ यह तो हुई राजा की व्यवस्था, अब सुनूँ मंत्री महोदय क्या कहते हैं।

शिखरस्वामी : मैं कहूँगा देवी, अवसर देख कर राज्य की रक्षा करने वाली उचित lEefr दे देना ही मेरा कर्त्तव्य है। राजनीति के सिद्धांत से राष्ट्र की रक्षा सब उपायों से करने का आदेश है। उसके लिए राजा, रानी, कुमार और अमात्य सब का विसर्जन किया जा सकता है। किंतु jkt-folTkZu अन्तिम उपाय है।

रामगुप्त : ¼izlUurk ls½ वाह! क्या कहा तुमने! तभी तो लोग तुम्हे uhfr-'kkL= का c`gLifr समझते हैं!

ध्रुवस्वामिनी : अमात्य, तुम बृहस्पति हो चाहे 'kqØ किन्तु धूर्त होने से ही क्या मनुष्य भूल नहीं करता? आर्य समुद्रगुप्त के पुत्र के पहचानने में तुमने भूल तो नहीं की? सिंहासन पर भ्रम से किसी दूसरे को तो नहीं बिठा दिया!

रामगुप्त : ¼vk'p;Z ls½ क्या? क्या?? क्या???

ध्रुवस्वामिनी : कुछ नहीं मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी i'kq-lEifÙk le>dj उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव, नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो। हाँ तुम लोगों को आपत्ति से बचाने के लिए मैं स्वयं यहाँ से चली जाऊँगी।

स्थिर:तय, निश्चित; सामंतों: किसी सम्राट द्वारा अपने अधीन सरदारों या राजाओं को दी गई पदवी; स्त्री-सम्प्रदान:देना, प्रदान करना; अग्नि-वेदी:यज्ञ इत्यादि के लिए तैयार किया हुआ स्थान जिसमें अग्नि प्रज्जवलित हो, विवाह की वेदी; द्राक्षासव:अंगूर का आसव (मदिरा); सम्मति:राय; राज-विसर्जन:परित्याग, छोड़ना; नीति-शास्त्र: वह शास्त्र जिसमें आचरण संबंधी नियमों का विधान हो, राजनीति संबंधी शास्त्र; बृहस्पति:देवताओं के गुरू; शुक्र: शुक्राचार्य, दैत्यों के गुरू; पशु-संपत्ति समझकर: संपत्ति समझना (मु.) (तद्भव रूप)।

शिखरस्वामी : ¼eg cuk dj½ ऊँह, राजनीति में ऐसी बातों का स्थान नहीं। जब तक नियमों के अनुकूल सन्धि का पूर्ण रूप से पालन न किया जाय, तब तक सन्धि का कोई अर्थ ही नहीं। ^/kzoLokfeuh*¼t;'kadj ^izlkn*½ okpu vkj 0;k[;k

ध्रुवस्वामिनी : देखती हूँ कि इस राष्ट्र-रक्षा-यज्ञ में रानी की बलि होगी ही।

शिखरस्वामी : दूसरा कोई उपाय नहीं।

ध्रुवस्वामिनी : ¼Øks/k ls iSj iVd dj½ उपाय नहीं, तो न हो निर्लज्ज अमात्य फिर ऐसा प्रस्ताव मैं सुनना नहीं चाहती।

रामगुप्त : ¼pkSd dj½ इस छोटी सी बात के लिए इतना बड़ा उपद्रव! ¼nklh dh vksj ns[kdj½ मेरा तो कण्ठ सूखने लगा।

¼og efnjk nsrh g½

ध्रुवस्वामिनी : ¼n<rk ls½ अच्छा, तो अब मैं चाहती हूँ कि अमात्य अपने मंत्रणा-गृह में जायें मैं केवल रानी ही नहीं, किन्तु स्त्री भी हूँ; मुझे अपने को पति कहने वाले पुरुष से कुछ कहना है, राजा से नहीं।

¼f'k[kjLokeh dk nkfl;ksa ds lkFk iLFkku½

रामगुप्त : ठहरो जी, मैं भी चलता हूँ ¼mBuk pkgrk gS A /kzoLokfeuh mldk gkFk idM+ dj jksd ysrh g½ तुम मुझसे क्या कहना चाहती हो?

ध्रुवस्वामिनी : ¼Bgj dj½ अकेले यहाँ भय लगता है क्या? बैठिए, सुनिए। मेरे पिता ने उपहार-स्वरूप कन्या-दान किया था। किंतु गुप्त-सम्राट क्या अपनी पत्नी शत्रु को उपहार में देंगे? ¼?kqVus ds cy cSBdj½ देखिए, मेरी ओर देखिए। मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारी नहीं कि अपने को स्वामी समझने वाला पुरुष उसके लिए izk.kksa dk i.k yxk सके।

रामगुप्त : ¼mls ns[krk gqvk½ तुम सुन्दर हो, ओह, कितनी सुन्दर; किन्तु सोने की कटार पर मुग्ध होकर उसे कोई अपने हृदय में डुबा नहीं सकता। तुम्हारी सुंदरता- तुम्हारा नारीत्व-अमूल्य हो सकता है। फिर भी अपने लिए मैं स्वयं कितना आवश्यक हूँ dnkfpr तुम यह नहीं जानती हो।

ध्रुवस्वामिनी : ¼mlds iSjksa dks idM+dj½ मैं गुप्त-कुल की वधू होकर इस राज-परिवार में आयी हूँ। इसी विश्वास पर।

रामगुप्त : ¼mls jksd dj½ वह सब मैं नहीं सुनना चाहता।

ध्रुवस्वामिनी : मेरी रक्षा करो। मेरे और अपने गौरव की रक्षा करो। राजा, आज मैं शरण की प्रार्थिनी हूँ। मैं स्वीकार करती हूँ कि आज तक मैं तुम्हारे विलास की सहचरी नहीं हुई; किंतु वह मेरा vgadkj चूर्ण हो गया है। मैं तुम्हारी होकर रहूँगी। राज्य और सम्पत्ति रहने पर राजा को-पुरुष को बहुत-सी रानियाँ और स्त्रियाँ मिलती हैं; किंतु व्यक्ति का eku नष्ट होने पर फिर नहीं मिलता।

रामगुप्त : ¼?kcjkdj mldk gkFk gVkrk gqvk½ ओह, तुम्हारा यह ?kkrd स्पर्श बहुत ही उत्तेजनापूर्ण है! मैं, - नहीं। तुम मेरी रानी? नहीं, नहीं। जाओ तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं तुम्हें किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें क्यों आपत्ति हो?

ध्रुवस्वामिनी : ¼[kM+h gksdj jks"k ls½ निर्लज्ज! e|i!! Dyho!!! ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं? (ठहर कर) नहीं, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी। मैं उपहार में देने की वस्तु, 'khry-ef.k नहीं हूँ। मुझ में रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय ऊष्ण है और उसमें आत्म-सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी। ¼j'kuk ls Ñik.kh fudky ysrh g½A

रामगुप्त : ¼Hk;Hkhr gksdj ihNs gVrk gqvk½ तो क्या तुम मेरी हत्या करोगी?

ध्रुवस्वामिनी : तुम्हारी हत्या? नहीं, तुम जिओ। भेड़ की तरह तुम्हारा क्षुद्र जीवन! उसे न लूँगी! मैं अपना ही जीवन समाप्त करूँगी।

रामगुप्त : किन्तु तुम्हारे मर जाने पर उस cccj शकराज के पास किसको भेजा जायगा? नहीं, नहीं, ऐसा न करो। हत्या! हत्या!! दौड़ो! दौड़ो!! ¼Hkkxrk gqvk

---

प्राणों का पण लगाना (मु.) : (तद्भव रूप-प्राणों की बाजी लगाना); कदाचितः शायद; अहंकारः गर्व, घमंड; मानःआत्म-सम्मान; घातकःहत्यारा, जीवन के लिए हानिकर; मद्यपःशराबी; क्लीवः कायर, नपुंसक; शीतल-मणिः शीतलता प्रदान करने वाली वस्तु, चन्द्रकांत मणि; रशनाःकरधनी; बर्बरः असभ्य, जंगली।

fudy tkrk g¼ nljh vkj l ox lfgr pUnxlr dk io'k½

चंद्रगुप्त : हत्या! कैसी हत्या!! ¼/kzoLokfeuh dk n[kdj½ यह क्या? महादेवी ठहरिए!

ध्रुवस्वामिनी : कुमार, इसी समय तुम्हें भी आना था! ¼lld#.k n[krh gbZ½ मैं प्रार्थना करती हूँ कि तुम यहाँ से चले जाओ! मुझे अपने अपमान में fuoZlu-नग्न देखने का किसी पुरुष को अधिकार नहीं! मुझे मृत्यु की चादर से अपने को ढँक लेने दो।

चंद्रगुप्त : किंतु क्या कारण सुनने का मैं अधिकारी नहीं हूँ?

ध्रुवस्वामिनी : सुनोगे? ¼Bgj dj lkprh gbZ½ नहीं, अभी आत्महत्या नहीं करूँगी। यह तीखी छुरी इस vr`Ir हृदय में fodklksUeq[k कुसुम में विषैले कीट के डंक की तरह चुभा दूँ या नहीं, इस पर विचार करूँगी। यदि नहीं तो मेरी दुर्दशा का पुरस्कार क्या कुछ और है? हाँ जीवन के लिए कृतज्ञ, उपकृत और आभारी होकर किसी के अभिमानपूर्ण आत्म-विज्ञापन का भार ढोती रहूँ -यही क्या विधाता का निष्ठुर विधान है? छुटकारा नहीं? जीवन नियति के कठोर आदेश पर चलेगा ही? तो क्या यह मेरा जीवन भी अपना नहीं है?

चंद्रगुप्त : देवि, जीवन विश्व की सम्पत्ति है। प्रमाद से, क्षणिक vkos'k से, या दुःख की कठिनाइयों से उसे नष्ट करना ठीक तो नहीं। गुप्त-कुल-लक्ष्मी आज यह fNUueLrk का अवतार किसलिए धारण करना चाहती है? सुनूँ भी?

ध्रुवस्वामिनी : नहीं, मैं न मरूँगी। क्योंकि तुम आ गये हो मेरी f'kfodk के साथ चामर-सज्जित अश्व पर चढ़कर तुम्हीं उस दिन आये थे? तुम्हारा विश्वासपूर्ण मुखमंडल मेरे साथ आने में क्यों इतना प्रसन्न था?

चंद्रगुप्त : मैं गुप्त-कुल-वधू को आदरसहित ले आने के लिए गया था फिर प्रसन्न क्यों न होता?

ध्रुवस्वामिनी : तो फिर आज मुझे शक-शिविर में पहुँचाने के लिए उसी प्रकार तुमको मेरे साथ चलना होगा। ¼vk[kk l vkl iksNrh g½

चंद्रगुप्त : ¼vk'p;Z l½ यह कैसा ifjgkl!

ध्रुवस्वामिनी : कुमार! यह परिहास नहीं, राजा की आज्ञा है। शकराज को मेरी अत्यन्त आवश्यकता है। यह vojks/k] बिना मेरे उपहार दिए नहीं हट सकता।

चन्द्रगुप्त : ¼vkos'k l½ यह नहीं हो सकता। महादेवी! जिस मर्यादा के लिए - जिस महत्त्व को स्थिर रखने के लिए, मैंने jktn.M ग्रहण न करके अपना मिला हुआ अधिकार छोड़ दिया; उसका यह अपमान! मेरे जीवित रहते आर्य समुद्रगुप्त के स्वर्गीय गर्व को इस तरह in-nfyr न होना पड़ेगा। ¼Bgj dj½ और भी एक बात है! मेरे हृदय के अन्धकार में प्रथम किरण-सी आकर जिसने अज्ञात भाव से अपना मधुर आलोक ढाल दिया था, उसका भी मैंने केवल इसीलिए भूलने का प्रयत्न किया कि—¼lglk pi gk tkrk g½A

ध्रुवस्वामिनी : ¼vk[k cn fd;s g, dyqgy-Hkjh iluurk l½ हाँ-हाँ कहो-कहो।

¼f'k[kjLokeh d lkFk jkexlr dk io'k½

रामगुप्त : देखो तो कुमार! यह भी कोई बात है? आत्महत्या कितना बड़ा अपराध है।

चंद्रगुप्त : और आप से तो वह भी नहीं करते बनता!

रामगुप्त : ¼f'k[kjLokeh l½ देखो, कुमार के मन में छिपा हुआ dyq"k कितना-कितना भयानक है?

शिखरस्वामी : कुमार, विनय गुप्त-कुल का सर्वोत्तम xg-fo/kku है, उसे न भूलना चाहिए!

चंद्रगुप्त : ¼0;X; l gldj½ अमात्य, तभी तो तुमने व्यवस्था दी है कि महादेवी को देकर भी सन्धि की जाय! क्यों, यही तो विनय की ijkd"Bk है, ऐसा विनय iopdk का vkoj.k है, जिसमें शील न हो। और शील परस्पर सम्मान की घोषणा करता है। कापुरुष! आर्य समुद्रगुप्त का सम्मान।

निवर्सनःवस्त्रहीन; अतृप्तःजो तृप्त या संतुष्ट न हो; विकासोन्मुखःजो विकसित हो रहा है; आवेशःक्रोध; छिन्नमस्ताःदेवी (शक्ति) का एक रूप; शिविकाःपालकी; परिहासःमजाक; अवरोधःबाधा; राजदण्डःराजा होने के प्रमाण के रूप में राजा द्वारा गृहीत अधिकार, राज्याधिकार; पद-दलितःपैरों के नीचे रौंदा हुआ, जो दबाकर हीन कर दिया गया हो; कलुषःपाप; गृह-विधानःपारिवारिक नियम; पराकष्ठाःचरम सीमा, हद; प्रवंचकोंःठग, धूर्त; आवरणःपर्दा, ढकने या छिपाने का साधन।

शिखरस्वामी : ¼chp e ckr dkV dj½ उसके लिए मुझे प्राणदण्ड दिया जाय! मैं उसे vfopy भाव से ग्रहण करूँगा; परंतु राजा और राष्ट्र की रक्षा होनी चाहिए।

मन्दाकिनी : ¼io'k djd½ राजा अपने राष्ट्र की रक्षा करने में असमर्थ है, तब भी उस राज की रक्षा होनी चाहिए। अमात्य यह कैसी विवशता है! तुम मृत्युदण्ड के लिए उत्सुक! महादेवी आत्महत्या करने के लिए प्रस्तुत! फिर यह हिचक क्यों? एक बार अन्तिम बल से परीक्षा कर देखो। बचोगे तो राष्ट्र और सम्मान भी बचेगा, नहीं तो सर्वनाश!

चंद्रगुप्त : आहा; मन्दा! भला तू कहाँ से यह उत्साह भरी बात कहने के लिए आ गई? ठीक तो है अमात्य! सुनो, यह स्त्री क्या कह रही है?

रामगुप्त : ¼viu gkFkk dk elyr g,½ दुरभिसन्धि, छल, मेरे प्राण लेने का कौशल!

चन्द्रगुप्त : तब आओ, हम स्त्री बन जाएँ और बैठ कर रोएँ।

हिजड़ा : ¼io'k djd½ कुमार, स्त्री बनना सहज नहीं है। कुछ दिनों तक मुझसे सीखना होगा। ¼lcdk eg n[krk g vkj f'k[kjLokeh d eg ij gkFk Qjrk g½ ऊहूँ, तुम नहीं बन सकते। तुम्हारे ऊपर बड़ा कठोर आवरण है। ¼dekj d leh tk dj½ कुमार! मैं शपथ खाकर कह सकती हूँ कि यदि मैं अपने हाथों से सजा दूँ तो आपको देखकर महादेवी को भ्रम हो जाय।

¼pnxIr mIdk dku idM dj ckgj dj nrk gA½

ध्रुवस्वामिनी : उसे छोड़ दो कुमार। यहाँ एक वही नपुंसक तो नहीं है। बहुत-से लोगों में से किस-किस को निकालोगे?

¼pnxIr mI NkM dj fpfUrr-Ik Vgyu yxrk g vkj f'k[kjLokeh jkexIr d dkuk e dN dgrk g½

चंद्रगुप्त : ¼Igl k [kM gkdj½ अमात्य, तो तुम्हारी ही बात रही। हाँ, उसमें तुम्हारे सहयोगी हिजड़े की भी सम्मति मुझे अच्छी लगी। मैं ध्रुवस्वामिनी बन कर अन्य सामन्त कुमारों के साथ शकराज के पास जाऊँगा। यदि मैं सफल हुआ तब तो कोई बात ही नहीं, अन्यथा, मेरी मृत्यु के बाद तुम लोग जैसा उचित समझना, वैसा करना।

ध्रुवस्वामिनी : ¼pnxIr dk viuh Hktvk e idMdj½ नहीं मैं तुमको न जाने दूँगी। मेरे क्षुद्र, दुर्बल-नारी-जीवन का सम्मान बचाने के लिए इतने बड़े बलिदान की आवश्यकता नहीं।

रामगुप्त : ¼vk'p;l vkj Øk/k l½ छोड़ो, छोड़ो यह कैसा अनर्थ! सबके सामने यह कैसी निर्लज्जता!

ध्रुवस्वामिनी : ¼pnxIr dk NkMrh gbl tIl prU; gk dj½ यह पाप है? जो मेरे लिए अपनी बलि दे सकता हो, जो मेरे स्नेह ¼Bgj dj½ अथवा इससे क्या? शकराज क्या मुझे देवी बना कर भक्ति-भाव से मेरी पूजा करेगा! वाह रे लज्जाशील पुरुष!

¼f'k[kjLokeh fQj jkexIr d dku e dN dgrk gA jkexIr Lohdkj lpd flj fgykrk g½

शिखरस्वामी : राजाधिराज, आज्ञा दीजिए, यही एक उपाय है, जिसे कुमार बता रहे हैं। किंतु राजनीति की दृष्टि से महादेवी का भी वहाँ जाना आवश्यक है।

चंद्रगुप्त : ¼Øk/k l½ क्यों आवश्यक है! यदि उन्हें जाना ही पड़ा तो फिर मेरे जाने से क्या लाभ! तब मैं न जाऊँगा।

रामगुप्त : नहीं यह मेरी आज्ञा है। सामन्त कुमारों के साथ जाने के लिए प्रस्तुत हो जाओ।

ध्रुवस्वामिनी : तो कुमार! हम लोगों का चलना निश्चित ही है अब इसमें विलम्ब की आवश्यकता नहीं।

¼pnxIr dk iLFkkuA /koLokfeuh ep ij cB dj jku yxrh g½

रामगुप्त : अब यह कैसा अभिनय! मुझे तो पहले से ही शंका थी, और आज तो तुमने मेरी आँखें भी खोल दी।

अविचलः अचल, स्थिर।

ध्रुवस्वामिनी : अनार्य! fu"Bj मुझे कलंक-कालिमा के कारागार में बंद कर, मर्म वाक्य के धुएँ से दम घोंट कर मार डालने की आशा न करो। आज मेरी असहायता मुझे अमृत पिलाकर मेरा निर्लज्ज जीवन बढ़ाने के लिए तत्पर है। ¼mBdj] gkFk ls fudy tkus dk ladsr djrh gbZ½ जाओ मैं एकांत चाहती हूँ।

¼f'k[kjLokeh dk lkFk jkex¤Ir dk iLFkku½

ध्रुवस्वामिनी : कितना अनुभूतिपूर्ण था वह एक क्षण का आलिंगन! कितने संतोष से भरा था! नियति ने अज्ञात भाव से मानों लू से तपी हुई olqa/kk को f{kfrt के निर्जन से सायंकालीन शीतल आकाश से मिला दिया हो। ¼Bgj dj½ जिस वायुविहीन प्रदेश में उखड़ी हुई साँसों पर बंधन हो- vxZyk हो वहाँ रहते-रहते वह जीवन असह्य हो गया था। तो भी मरूँगी नहीं। संसार के कुछ दिन विधाता के fo/kku में अपने लिए सुरक्षित करा लूँगी। कुमार! तुमने वही किया, जिसे मैं बचाती रही। तुम्हारे उपहार और स्नेह की वर्षा से मैं भीगी जा रही हूँ। ओह, ¼ân; ij mxyh j[kdj½ इस वक्षस्थल में दो हृदय हैं क्या? जब अंतरंग 'हाँ' कहना चाहता है, तब ऊपरी मन 'ना' क्यों कहला देता है?

चंद्रगुप्त : ¼iqu% izos'k dj dk½ महादेवी, हम लोग प्रस्तुत हैं किंतु ध्रुवस्वामिनी के साथ शक-शिविर में जाने के लिए हम लोग सहमत नहीं।

ध्रुवस्वामिनी : ¼gal dj½ राजा की आज्ञा मान लेना ही पर्याप्त नहीं। रानी की भी एक बात न मानोगे? मैंने तो पहले ही कुमार से प्रार्थना की थी कि मुझे जैसे ले आए हो; उसी तरह पहुँचा भी दो।

चंद्रगुप्त : नहीं - मैं अकेला ही आऊँगा।

ध्रुवस्वामिनी : कुमार! यह मृत्यु और fuokZlu का सुख, तुम अकेले ही लोगे, ऐसा नहीं हो सकता। राजा की इच्छा क्या है, यह जानते हो? मुझसे और तुमसे एक साथ ही छुटकारा। तो फिर वही क्यों न हो? हम दोनों ही चलेंगे। मृत्यु के xgoj में प्रवेश करने के समय मैं भी तुम्हारी ज्योति बन कर बुझ जाने की कामना रखती हूँ। और भी एक विनोद, प्रलय का परिहास, देख सकूँगी। मेरी सहचरी, तुम्हारा वह ध्रुवस्वामिनी का वेश, ध्रुवस्वामिनी ही न देखे तो किस काम का?

¼nkuksa gkFkksa ls pUnzxqIr dk *fpcqd* idM+ dj ld#.k n[krh g½

चंद्रगुप्त : ¼v/k[kqyh vk[kksa ls n[krk gqvk½ तो फिर चलो।

¼lkeUr dqekjksa ds vkxs-vkxs enkfduh dk xhkhj Loj ls xkrs gq, iqo'k½

पैरों के नीचे जलधर हों, बिजली से उनका खेल चले
संकीर्ण कगारों के नीचे, शत-शत झरने बेमेल चले
सन्नाटे में हो विकल पवन, पादप निज पद हों चूम रहे
तब भी गिरि-पथ का अथक पथिक, ऊपर ऊँचे सब झेल चले
पृथ्वी की आँखों में बन कर छाया कर पुतला बढ़ता हो
सूने तम में हो ज्योति बना, अपनी प्रतिभा को गढ़ता हो
पीड़ा की धूल उड़ाता-सा, बाधाओं को ठुकराता-सा
कष्टों पर कुछ मुसक्याता-सा, ऊपर ऊँचे सब झेल चले
खिलते हों क्षत के फूल वहाँ बन व्यथा तमिस्रा के तारे,
पद-पद पर ताण्डव नर्त्तन हो, स्वर सप्तक होवें लय सारे
भैरव रव से हो व्याप्त दिशा, हो काँप रही भय-चकित निशा
खिलते हो क्षत के फूल वहाँ बन व्यथा तमिस्रा के तारे,
पद-पद पर ताण्डव नर्तन हो, स्वर सप्तक होवें लय सारे
भैरव रव से हो व्याप्त दिशा, हो काँप रही भय-चकित निशा
हो स्वेद धार बहती कपिशा, ऊपर ऊँचे सब झेल चले
विचलित हो अचल न मौन रहे निष्ठुर श्रृंगार उतरता हो
क्रन्दन कम्पन न पुकार बने, निज साहस पर निर्भरता हो

निष्ठुर:बेरहम; वसुधा:धरती; क्षितिज:वह स्थान जहाँ धरती और आकाश मिले हुए दिखाई देते हैं; अर्गला: बाँधने की जंजीर, बंधन; विधान:कानून; निर्वासन:देश निकाला; गह्वर:गुफा, छिपने लायक अंधेरी जगह; चिबुक: ठुड्डी।

अपनी ज्वाला को आप पिये नव-नीलकंठ की छाप लिए
विश्राम शांति को शाप दिये, ऊपर ऊंचे सब झेल चले।

¼pnxlr vkj /koLokfeuh lcdk /khj-/khj iLFkku vdyh enkfdruh [kMh jg tkrh g½

iVk{ki

f}rh; vd

¼'kd nx dk Hkhrj lugy dke oky [kHkk ij ,d nkyku] chp e NkVh-NkVh nk lhf<;k] mlh d lkeu dk'ehjh [knkbZ dk lUnj ydMh dk flgklu % chp d nk [kEHk [kky g, g] mud nkuk vkj ekV-ekV fp= cu g, frCcrh <x d j'keh in iM g\A lkeu chp e NkVk-lk vkxu dh rjg] ftld nkuk vkj D;kfj;k mue nk- pkj ik/k vkj yrk,] Qyk l ynh fn[kkbZ iMrh g½

कोमा : ¼/khj-/khj ik/kk dk n[krh gbZ iox'k djd½ इन्हें सींचना पड़ता है, नहीं तो इनकी रुखाई और मलिनता सौंदर्य पर आवरण डाल देती है। ¼n[kdj½ आज तो इनके पत्ते धुले हुए भी नहीं हैं। इनमें फूल, जैसे edfyr होकर ही रह गये हैं। खिलखिलाकर हँसने का मानों इन्हें बल नहीं। ¼lkpdj½ ठीक, इधर कई दिनों से महाराज अपने ;)-foxg में लगे हुए हैं और मैं भी यहाँ नहीं आयी, तो फिर इनकी चिन्ता कौन करता है? उस दिन मैंने यहाँ दो मंच और भी रख देने के लिए कहा था, पर सुनता कौन है। सब tl jDr d l;kl! प्राण लेने और देने में पागल! बसन्त का उदास और अलस पवन आता है, चला जाता हैं कोई उस स्पर्श से परिचित नहीं। ऐसा तो वास्तविक जीवन नहीं है? (lh<h ij cBdj lkpu yxrh g) i.k;! प्रेम! जब सामने से आते हुए तीव्र आलोक की तरह आँखों में प्रकाश it उँड़ेल देता है, तब सामने की सब वस्तुएं और भी अस्पष्ट हो जाती हैं। अपनी ओर से कोई भी प्रकाश की किरण नहीं। तब वही केवल वही! हो पागलपन, भूल हो, दुःख मिले, प्रेम करने की एक ऋतु होती है। उसमें चूकना, उसमें सोच-समझ कर चलना, दोनों बराबर है। सुना है, दोनों ही संसार के चतुरों की दृष्टि में मूर्ख बनते हैं, तब कोमा, तू किसे अच्छा समझती है?

¼xkrh g½

;kou! rjh pppy Nk;k
ble cB ?kV Hkj ih y tk jl r g yk;k
ej l;ky e en cudj dc r Nyh lek;k
thou-o'kh d fNnk e Loj cudj ygjk;k
iy Hkj #du oky! dg r ifFkd! dgk l vk;kA

¼pi gkdj vk[k cn fd, rUe; gkdj cBh jg tkrh gA 'kdjkt dk iox'kA gkFk e ,d ych ryokj fy, g, fpfUrr Hkko l vkdj bl rjg [kMk gkrk g] ftl l dkek dk ugh n[krk½

शकराज : खिंगल अभी नहीं आया, क्या वह बंदी तो नहीं कर लिया गया? नहीं, यदि वे अंधे नहीं हैं तो उन्हें अपने सिर पर खड़ी विपत्ति दिखाई देनी चाहिए ¼lkpdj½ विपत्ति! केवल उन्हीं पर तो नहीं है, हम लोगों को भी रक्त की नदी बहानी पड़ेगी। चित्त बड़ा चंचल हो रहा है। तो बैठ जाऊँ? इस एकान्त में अपने बिखरे हुए मन को सँभाल लूँ? ¼b/kj-m/kj n[krk g] dkek vkgV ik dj mB [kMh gkrh gA ml n[k dj½ अरे, कोमा! कोमा!

कोमा : हाँ, महाराज! क्या आज्ञा है?

शकराज : ¼ml fLuX/k Hkko l n[kdj½ आज्ञा नहीं, कोमा! तुम्हें आज्ञा न दूँगा! तुम रूठी हुई-सी क्यों बोल रही हो।

मुकुलितः अधखिला; युद्ध-विग्रहः युद्ध तथा वैर-विरोध; रक्त के प्यासेः खून बहाने को तत्पर, युद्ध और मारकाट करने वाले, प्रणयः श्रृंगारिक प्रेम; पुंजःढेर, अत्यधिक मात्रा।

कोमा : रूठने का lgkx मुझे मिला कब?

शकराज : आजकल मैं जैसी भीषण परिस्थिति में हूँ, उसमें vU;euLd होना स्वाभाविक है, तुम्हें यह न भूल जाना चाहिए।

कोमा : तो क्या आपकी दुश्चिन्ताओं में मेरा भाग नहीं? मुझे उससे अलग रखने से क्या वह परिस्थिति कुछ सरल हो रही है?

शकराज : तुम्हारे हृदय को उन दुर्भावनाओं में डाल कर व्यथित नहीं करना चाहता। मेरे सामने जीवन-मरण का प्रश्न है।

कोमा : प्रश्न स्वयं किसी के सामने नहीं आते। मैं तो समझती हूँ, मनुष्य उन्हें जीवन के लिए उपयोगी समझता है। मकड़ी की तरह लटकने के लिए अपने-आप ही जाला बुनता है। जीवन का प्राथमिक प्रसन्न उल्लास मनुष्य के भविष्य में मंगल और सौभाग्य को आमन्त्रित करता है। उससे उदासीन न होना चाहिए महाराज!

शकराज : सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्बलता के नाम हैं। मैं तो पुरुषार्थ को ही सबका नियामक समझता हूँ। पुरुषार्थ ही सौभाग्य को खींच लाता है। हाँ, मैं इस युद्ध के लिए उत्सुक नहीं था कोमा, मैं ही दिग्विजय के लिए नहीं निकला था।

कोमा : संसार के नियम के अनुसार आप अपने से महान के सम्मुख थोड़ा-सा विनीत बनकर इस उपद्रव से अलग रह सकते थे।

शकराज : यही तो मुझ से नहीं हो सकता।

कोमा : अभावमयी लघुता में मनुष्य अपने को महत्त्वपूर्ण दिखाने का अभिनय न करे तो क्या अच्छा नहीं है?

शकराज : ¼fp<dj½ यह शिक्षा अभी रहने दो कोमा, किसी से बड़ा नहीं हूँ तो छोटा भी नहीं बनना चाहता। तुम अभी तक पाषाणी प्रतिभा की तरह वहीं खड़ी हो, मेरे पास आओ।

कोमा : ik"kk.kh! हाँ, राजा! पाषाणी के भीतर भी कितने मधुर स्रोत बहते रहते हैं। उनमें मदिरा नहीं, शीतल जल की धारा बहती है। प्यासों की तृप्ति —

शकराज : किंतु मुझे तो इस समय स्फूर्ति के लिए एक प्याला मदिरा ही चाहिए।

¼dkek ,d NkVk-lk ep j[k n[krh g vkj pyh tkrh gA 'kdjkt ep ij cB tkrk gA f[kxy dk io'k½

कोमा : ¼fLFkj nf"V l n[krh gb½ मैं आती हूँ। आप बैठिए।

शकराज : कहो जी, क्या समाचार है।

खिंगल : महाराज! मैंने उन्हें अच्छी तरह समझा दिया कि हम लोगों का अवरोध दृढ़ है। उन्हें दो में से एक करना ही होगा। या तो अपने प्राण दें अन्यथा मेरे संधि के नियमों को स्वीकार करें।

शकराज : ¼mRldrk l½ तो वे समझ गये?

खिंगल : दूसरा उपाय ही क्या था। यह Nkdjk रामगुप्त, समुद्रगुप्त की तरह दिग्विजय करने निकला था। उसे इन बीहड़ घाटियों का परिचय नहीं मिला था। किंतु सब बातों को समझ कर वह आपके नियमों को मानने के लिए बाध्य हुआ है।[1]

शकराज : ¼ilUurk l mBdj mldk nkuk gkFk idM yrk g½ ऐं, तुम सच कहते हो! मुझे आशा नहीं। क्या मेरा दूसरा प्रस्ताव भी रामगुप्त ने मान लिया?

¼Lo.k dk dy'k e efnjk ydj dkek ipdk l vkdj ihN [kMh gk tkrh g½

खिंगल : हाँ महाराज! उसने माँगे हुए सब उपहारों को देना स्वीकार किया और ध्रुवस्वामिनी भी आपकी सेवा में शीघ्र ही उपस्थित होती है।

¼dkek pkd mBrh g vkj 'kdjkt ilUurk l f[kxy dk gkFkk dk >d>kju yxrk g½

शकराज : खिंगल! तुमने कितना सुंदर समाचार सुनाया। आज noiq=k की स्वर्गीय आत्माएँ प्रसन्न होंगी। उनकी पराजयों का यह ifr'kk/k है। हम लोग गुप्तों की दृष्टि में जंगली, बर्बर और असभ्य हैं तो फिर मेरी ifrfglk भी बर्बरता के ही अनुकूल होगी। हाँ, मैंने अपने शूर-सामंतों के लिए स्त्रियाँ भी माँगी थीं।

सुहागःसौभाग्य; अन्यमनस्कःअनमना; पाषाणीःपत्थर की; छोकराःकच्ची उम्र और अक्ल का लड़का;देवपुत्रोंः देवताओं के पुत्र, पूर्वजों के लिए सम्मानपूर्वक प्रयुक्त शब्द; प्रतिशोधःबदला; प्रतिहिंसाःबदला, हिंसा के बदले हिंसा।

खिंगल : वे भी साथ आयेगी।

शकराज : तो फिर सोने की >k> वाली नाच कर प्रबंध करो, इस विजय का उत्सव मनाया जाय और मेरे सामंतों को भी शीघ्र बुला लाओ।

¼f[kxy dk iLFkku % 'kdjkt viuh iz lUurk e mf}Xu lk b/kj-m/kj Vgyus yxrk g vkSj dkek viuk dy'k fy, g, /khjs-/khjs fl gklu ds ikl vkdj [kM+h gks tkrh gA pkj lkeUrksa dk izos'kA nwljh vkSj ls urfd;ksa dk ny vkrk gA 'kdjkt mudh vkSj gh n[krk gvk fl gklu ij cSB tkrk gA lkeUr yksx mlds ijks ds uhps lhf<+;ksa ij cSBrs gA urfd;k ukprh gbZ xkrh g½

अस्ताचल पर युवती संध्या की खुली अलक घुँघराली है
लो; मानिक मदिरा की धारा अब बहने लगी निराली है
भर ली पहाड़ियों ने अपनी झीलों की रत्नमयी प्याली
झुक चली चूमने बल्लरियों से लिपटी तरु की डाली है
यह लगा पिघलने-मानिनियों का हृदय मृदु प्रणय-रोष भरा
वे हँसती हुई दुलार-भरी मधु लहर उठाने वाली हैं
भरने निकले हैं प्यार-भरे जोड़े कुंजों की झुरमुट से
इस मधुर अँधेरे में अब तक क्या इनकी प्याली खाली है
भर उठीं प्यालियाँ, सुमनों ने सौरभ मकरन्द मिलाया है
कामिनियों ने अनुराग-भरे अधरों से उन्हें लगा ली है
वसुधा मदमाती हुई उधर आकाश लगा देखो झुकने
सब झूम रहे अपने सुख में तूने क्यों बाधा डाली है

¼urfd;k tku yxrh g½

एक सामन्त : श्रीमान्! इतनी बड़ी विजय के अवसर पर इस सूखे उत्सव से संतोष नहीं होता, जब कि कलश सामने भरा हुआ रखा है।

शकराज : ठीक है, इन लोगों को केवल कहकर ही नहीं, प्यालियाँ भर कर भी देनी चाहिए।

¼lc ihrs g vkSj urfd;k ,d-,d dks lkujk/k iku djkrh g½

दूसरा सामंत : श्रीमान् की आज्ञा मानने के अतिरिक्त दूसरी गति नहीं। उन्होंने समझ से काम लिया, नहीं तो हम लोगों को इस रात की कालिमा में रक्त की लाली मिलानी पड़ती।

तीसरा सामंत : क्यों बक-बक करते हो? चुप-चाप इस बिना परिश्रम की विजय का आनन्द लो। लड़ना पड़ता तो सारी हेंकड़ी भूल जाती।

दूसरा सामंत : ¼Øk/k ls yM[kM+krk gvk mBrk g½ हमसे!

तीसरा सामंत : हाँ जी तुमसे!

दूसरा सामंत : तो फिर आओ तुम्हीं से निपट लें ¼lc ijLij yMus dh ps"Vk dj jgs gA 'kdjkt f[kxy dks ladsr djrk gA og mu yksxksa dks ckgj fyok tkrk gA rRi;'pkn½

शकराज : रात्रि के आगमन की सूचना हो गयी। दुर्ग का द्वार अब शीघ्र ही बंद होगा। अब तो हृदय अधीर हो रहा है। खिंगल!

¼f[kxy dk iqu% izos'k½

खिंगल : दुर्ग तोरण में शिविकाऐं आ गयी हैं।

शकराज : ¼xoZ ls½ तब विलम्ब क्यों? उन्हें अभी ले आओ।

खिंगल : ¼lfou;½ किंतु रानी की एक प्रार्थना है।

शकराज : क्या!

खिंगल : वह पहले केवल श्रीमान् से ही सीधे भेंट करना चाहती हैं। उनकी मर्यादा····

शकराज : ¼BBkdj gWlrs g,½ क्या कहा? मर्यादा? भाग्य ने झुकने के लिए जिन्हे परवश कर दिया है, उन लोगों के मन में मर्यादा का ध्यान और भी अधिक रहता है। यह उनकी दयनीय दशा है।

झाँझ : दो तश्तरी जैसी टुकड़ों से बना मंजीरे जैसा बाजा; उद्विग्नः उत्तेजित, परेशान, बेचैन।

खिंगल : वह श्रीमान की रानी होने के लिए आ रही हैं।

शकराज : ¼gl dj½ अच्छा, तुम मध्यस्थ हो न! तुम्हारी बात मान कर मैं उससे एकांत में ही भेंट करूँगा जाओ।

¼f[kxy dk iLFkku½

कोमा : महाराज! मुझे क्या आज्ञा है।

शकराज : ¼pkd dj½ अरे, तुम अभी यही खड़ी हो? मैं तो जैसे भूल ही गया था। हृदय चंचल हो रहा है। मेरे समीप आओ कोमा!

कोमा : नयी रानी के आगमन की प्रसन्नता से?

शकराज : ¼lHky dj½ नयी रानी का आना क्या तुम्हें अच्छा नहीं लगा कोमा?

कोमा : ¼fufodkj Hkko l½ संसार में बहुत-सी बातें बिना अच्छी हुए भी अच्छी लगती हैं, और बहुत-सी अच्छी बातें बुरी मालूम पड़ती हैं।

शकराज : ¼>q>yk dj½ तुम तो आचार्य मिहिरदेव की तरह दार्शनिकों की-सी बातें कर रही हो!

कोमा : वे मेरे पिता-तुल्य हैं, उन्हीं की शिक्षा में मैं पली हूँ। हाँ ठीक है, जो बातें राजा को अच्छी लगें, वे ही मुझे भी रुचनी ही चाहिए।

शकराज : ¼v0;ofLFkr gkdj½ अच्छा, तुम इतनी अनुभूतिमयी हो, यह मैं आज जान सका।

कोमा : राजा, तुम्हारी स्नेह-सूचनाओं की सहज प्रसन्नता और मधुर vkykiksa ने जिस दिन मन में नीरस और नीरव शून्य के संगीत की, वसन्त की और edjUn की सृष्टि की थी, उसी दिन से मैं अनुभूतिमयी बन गयी हूँ। क्या वह मेरा भ्रम था? कह दो- कह दो कि वह तेरी भूल थी।

¼mÙkftr dkek flj mBk dj jktk ls vk[k feykrh g½

शकराज : ¼ldkp l½ नहीं कोमा, वह भ्रम नहीं था। मैं सचमुच तुम्हें प्यार करता हूँ।

कोमा : ¼mlh rjg½ तब भी यह बात?

शकराज : ¼l'kd½ कौन-सी बात?

कोमा : वही जो आज होने जा रहा है! मेरे राजा! आज तुम एक स्त्री को अपने पति से fofPNUu कराकर अपने गर्व की तृप्ति के लिए कैसा अनर्थ कर रहे हो?

शकराज : ¼gl dj ckr mMkr g,½ पगली कोमा! वह मेरी राजनीति का प्रतिशोध है।

कोमा : ¼n<rk l½ किंतु, राजनीति का प्रतिशोध, क्या एक नारी को कुचले बिना पूरा नहीं हो सकता?

शकराज : जो विषय न समझ में आवे, उस पर विवाद न करो।

कोमा : ¼f[kUu gkdj½ मैं क्यों न करूँ। ¼Bgj dj½ किंतु नहीं, मुझे विवाद करने का अधिकार नहीं। यह मैं समझ गयी।

¼og n%[kh gkdj tkuk pkgrh g fd nljh vkj ls fefgjno dk ios'k½

शकराज : ¼lHke ls [kMk gkdj½ धर्मपूज्य! मैं वन्दना करता हूँ।

मिहिरदेव : dY;k.k हो! ¼dkek d flj ij gkFk j[kdj½ बेटी! मैं तो तुझको ही देखने चला आया। तू उदास क्यों है?

¼'kdjkt dh vkj x< nf"V ls n[ku yxrk g½

शकराज : आचार्य! रामगुप्त का ni nyu dju के लिए, मैंने ध्रुवस्वामिनी को उपहार में भेजने की आज्ञा दी थी। आज रामगुप्त की रानी मेरे दुर्ग में आयी है। कोमा को इससे आपत्ति है।

मिहिरदेव : ¼xHkhjrk l½ ऐसे काम में तो आपत्ति होनी ही चाहिए राजा! स्त्री का सम्मान नष्ट करके तुम जो भयानक अपराध करोगे, उसका फल क्या अच्छा होगा? और भी, यह अपनी भावी पत्नी के प्रति तुम्हारा अत्याचार होगा।

शकराज : ¼{kkHk l½ भावी पत्नी?

मिहिरदेव : अरे, क्या तुम इस क्षणिक सफलता से ieÙk हो जाओगे? क्या तुमने अपने आचार्य की प्रतिपालिता कुमारी के साथ स्नेह का संबंध नहीं स्थापित किया है? क्या इसमें भी संदेह है। राजा! स्त्रियों का स्नेह - विश्वास भंग कर देना,

---

आलापोंः कथन, बातचीत, संगीत के सातों स्वर; मकरन्दःफूलों का रस, मधु; विच्छिन्नःअलग; कल्याणःभला, मंगल या शुभ; दर्प दलन करनाःघमंड चूर करना; प्रमत्तःमतवाला, नशे या घमंड में चूर।

कोमल rr को तोड़ने से भी सहज है, परंतु सावधान होकर उसके परिणाम को भी सोच लो।

शकराज : मैं समझता हूँ कि आप मेरे राजनीतिक कामों में gLr{ki न करें तो अच्छा हो।

मिहिरदेव : राजनीति? राजनीति ही मनुष्यों के लिए सब कुछ नहीं है। राजनीति के पीछे uhfr से भी gkFk u /kks cBk जिसका विश्वमानव के साथ व्यापक संबंध है। राजनीति की साधारण Nyukvk से सफलता प्राप्त करके क्षण भर के लिए तुम अपने को चतुर समझ लेने की भूल कर सकते हो। परंतु इस Hkh"k.k संसार में एक प्रेम करने वाले हृदय को खो देना, सबसे बड़ी हानि है। शकराज! दो प्यार करने वाले हृदयों के बीच में स्वर्गीय ज्योति का निवास है।

शकराज : बस, बहुत हो चुका! आपके महत्त्व की भी एक सीमा होगी। अब आप यहाँ से नहीं जाते हैं, तो मैं ही चला जाता हूँ ¼iLFkku½।

मिहिरदेव : चल कोमा! हम लोगों को लताओं, वृक्षों और चट्टानों से छाया और सहानुभूति मिलेगी। इस दुर्ग से बाहर चल।

कोमा : ¼xnxn d.B l½ पिता जी! ([kMh jgrh g)

मिहिरदेव : बेटी! हृदय को सँभाल। कष्ट सहन करने के लिए प्रस्तुत हो जा। irkj.kk में बड़ा मोह होता है। उसे छोड़ने को मन नहीं करता। कोमा! छल का cfgjx सुन्दर होता है - विनीत और आकर्षक भी; पर दुखदायी और हृदय को c/ku के लिए। इस बंधन को तोड़ डाल।

कोमा : ¼ld#.k½ तोड़ डालूँ पिताजी! मैंने जिसे अपने आँसुओं से सींचा, वही nykj भरी cYyjh, मेरे आँख बंद कर चलने में मेरे ही पैरों से उलझ गयी है। दे दूँ एक झटका – उसकी हरी-हरी पत्तियाँ कुचल जायें और वह fNUu होकर धूल में लोटने लगे? ना, ऐसी कठोर आज्ञा न दो!

मिहिरदेव : (fu%'okl ydj vkdk'k dk n[kr g,) यहाँ तेरी भलाई होती, तो मैं चलने के लिए न कहता। हम लोग अखरोट की छाया में बैठेंगे – झरनों के किनारे, nk[k के कुज्जें में विश्राम करेंगे। जब नीले आकाश में मेघों के टुकड़े, मानसरोवर जाने वाले हंसों का अभिनय करेंगे, तब तू अपनी तकली पर ऊन कातती हुई, कहानी कहेगी ओर मैं सुनूँगा।

कोमा : तो चलूँ! (,d ckj pkjk vkj n[k dj) एक घड़ी के लिए मुझे····

मिहिरदेव : (Åc dj vkdk'k dh vkj n[krk gvk) तू नहीं मानती। वह देख, uhy ykfgr रंग का /kedr vfopy भाव से इस दुर्ग की ओर कैसा भयानक संकेत कर रहा है।

कोमा : (m/kj n[kr g,) तब भी एक क्षण मुझे····

मिहिरदेव : पागल लड़की! अच्छा मैं फिर आऊँगा। तू सोच ले, विचार कर ले (tkrk g)।

कोमा : जाना ही होगा! तब यह मन की उलझन क्यों? अमंगल का अभिशाप अपनी क्रूर हँसी से इस दुर्ग को कँपा देगा, और सुख के स्वप्न foyhu हो जायेंगे। मेरे यहाँ रहने से उन्हें अपने भावों को छिपाने के लिए बनावटी व्यवहार करना होगा; पग-पग पर अपमानित हो कर मेरा हृदय उसे सह नहीं सकेगा। तो चलूँ। यही ठीक है! पिताजी! ठहरिए, मैं आती हूँ।

शकराज : (io'k djd) कोमा?

कोमा : जाती हूँ, राजा!

शकराज : कहाँ? आचार्य के पास? मालूम होता है कि वे बहुत ही दुखी हो कर चले गये हैं।

कोमा : धूमकेतु को दिखाकर उन्होंने मुझसे कहा है कि तुम्हारे दुर्ग में रहने से अमंगल होगा।

तंतुः धागा, रेशा; हस्तक्षेपः दूसरों की बात या उनके काम में दखल देना; नीतिः व्यवहार की वह पद्धति जिसमें अपना कल्याण हो और समाज को भी कोई बाधा न पहुँचे; हाथ न धो बैठोःखो देना; छलनाओः धोखा; भीषणःडरावना; प्रतारणाःवंचना, ठगी; बहिरंगःबाहरी रूप; बेधनेःछेद करना, घाव करना; दुलारःप्यार; बल्लरीःबेल; छिन्नःकट कर अलग गिरना; दाखःअंगूर, द्राक्षा (संस्कृत शब्द); नीलःनीला; लोहितःलाल; धूमकेतुःपुच्छल तारा। यह माना जाता है कि आकाश में पुच्छल तारा दिखाई देना अमंगल का सूचक होता है; अविचलःशांत, स्थिर; विलीनःछिपना, खोना, नष्ट होना।

शकराज : (Hk;Hkhr gksdj mls ns[krk gqvk½ आह! भयावनी पूँछवाला धूमकेतु! आकाश का उच्छृंखल पर्यटक! नक्षत्रलोक का अभिशाप! कोमा! आचार्य को बुलाओ। वे जो आदेश देंगे, वही मैं करूँगा। इस अमंगल की शान्ति होनी चाहिए।

कोमा : वे बहुत चिढ़ गए हैं। अब उनको प्रसन्न करना सहज नहीं है। वे मुझे अपने साथ लिवा जाने के लिए मेरी प्रतीक्षा करते होंगे।

शकराज : कोमा! तुम कहाँ जाओगी?

कोमा : पिताजी के साथ।

शकराज : और मेरा प्यार, मेरा स्नेह, सब भुला दोगी? इस अमंगल की शांति करने के लिए आचार्य को न समझाओगी?

कोमा : (f[kUu gksdj) प्रेम का नाम न लो! वह एक पीड़ा थी जो छूट गयी। उसकी कसक भी धीरे-धीरे दूर हो जायेगी। राजा, मैं तुम्हें प्यार नहीं करती। मैं तो niZ से nhIr तुम्हारी महत्त्वमयी पुरुष-मूर्ति की पुजारिन थी, जिसमें पृथ्वी पर अपने पैरों से खड़े रहने की दृढ़ता थी! इस LokFkZ-efyu कलुष से भरी मूर्ति से मेरा परिचय नहीं। अपने तेज की अग्नि में जो सब कुछ भस्म कर सकता हो, उस दृढ़ता का, आकाश के नक्षत्र कुछ बना-बिगाड़ नहीं सकते। तुम आशंका-मात्र से दुर्बल – कम्पित और भयभीत हो।

शकराज : ¼/kwedsrq dks ckj-ckj ns[krk gqvk½ भयानक! कोमा, मुझे बचाओ!

कोमा : जाती हूँ महाराज! पिताजी मेरी प्रतीक्षा करते होंगे।

¼tkrh gSA 'kdjkt vius flagklu ij grk'k gksdj cSB tkrk gS½

प्रहरी : (izos'k djds) महाराज! ध्रुवस्वामिनी ने पूछा है कि एकांत हो तो आऊँ।

शकराज : हाँ कह दो कि यहाँ एकान्त है। और देखो, यहाँ दूसरा कोई न आने पावे।

¼izgjh tkrk gS½ 'kdjkt pspy gksdj Vgyus yxrk gSA /kwedsrq dh vksj nf"V tkrh gS rks Hk;Hkhr gksdj cSB tkrk gS½

शकराज : तो इसका कोई उपाय नहीं? न जाने क्यों मेरा हृदय घबरा रहा है। कोमा को समझा-बुझा कर ले आना चाहिये ¼lksp dj½ किंतु इधर ध्रुवस्वामिनी जो आ रही है! तो भी देखूँ, यदि कोमा प्रसन्न हो जाय.... ¼tkrk gS½

¼L=h-os'k esa pUnzxqIr vkxs vkxs ihNs /kzqoLokfeuh Lo.kZ-[kfpr mÙkjh; esa lc vax fNik;s gq;s vkrh gSA dksey [kyus gq, eq[k ij izlUu p"Vk fn[kkbZ nsrh gS½

चंदगुप्त : तुम आज कितनी प्रसन्न हो।

ध्रुवस्वामिनी : और तुम क्या नहीं?

चंद्रगुप्त : मेरे जीवन fu'khFk का /kzqo-u{k= इस घोर अंधकार में अपनी स्थिर उज्ज्वलता से चमक रहा है। आज महोत्सव है न?

ध्रुवस्वामिनी : लौट जाओ, इस तुच्छ नारी-जीवन के लिए इतने महान् mRlxZ की आवश्यकता नहीं।

चंद्रगुप्त : देवी! यह तुम्हारा क्षणिक मोह है। मेरी परीक्षा न लो! मेरे शरीर ने चाहे जो रूप धारण किया हो, किंतु हृदय निश्छल है।

ध्रुवस्वामिनी : अपनी कामना की वस्तु न पाकर यह आत्महत्या जैसा प्रसंग तो नहीं है।

चंद्रगुप्त : तीखे वचनों से मर्माहत कर के भी आज कोई मुझे इस मृत्यु-पथ से विमुख नहीं कर सकता! मैं केवल अपना कर्त्तव्य करूँ, इसी में मुझे सुख है। (/kzqoLokfeuh ladsr djrh gSA 'kdjkt dk izos'kA nksuksa pqi gks tkrs gSA og nksuksa dks pfdr gksdj ns[krk gS½

शकराज : मैं किसको रानी समझूँ रूप का ऐसा तीव्र आलोक! नहीं मैंने कभी नहीं देखा था। इसमें कौन ध्रुवस्वामिनी है?

ध्रुवस्वामिनी : यह मैं आ गयी हूँ।

चंद्रगुप्त : ¼g¡l dj½ शकराज को तुम धोखा नहीं दे सकती हो। ध्रुवस्वामिनी कौन है? यह अन्धा भी बता सकता है।

दर्पः गर्व, दीप्तः जगमगाती; स्वार्थ-मलिनःस्वार्थ से मैली; निशीथःआधी रात (जीवन नीशीथ-जीवन रूपी रात्रि); ध्रुव-नक्षत्रःध्रुव तारा जो सदा उत्तर दिशा में एक स्थान पर स्थित रहता है। ध्रुव नक्षत्र दृढ़ता का प्रतीक है। चंद्रगुप्त भी अपने कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए दृढ़ संकल्प है; उत्सर्गः त्याग।

ध्रुवस्वामिनी : ¼vk'p;l l½ चंद्रे! तुमको क्या हो गया है? यहां आने पर तुम्हारी इच्छा रानी बनने की हो गई है? या मुझे शकराज से बचा लेने के लिए यह तुम्हारी स्वामिभक्ति है?

¼'kdjkt pfdr gk dj nkuk dh vkj n[krk g½

चंद्रगुप्त : कौन जाने तुम्हीं ऐसा कर रही हो?

ध्रुवस्वामिनी : चंद्रे! तुम मुझे दोनों ओर से नष्ट न करो। यहाँ से लौट जाने पर भी क्या मैं गुप्तकुल के अंतःपुर में रह पाऊँगी?

चंद्रगुप्त : चंद्रे कह कर मुझको पुकारने से तुम्हारा क्या तात्पर्य है? यह अच्छा झगड़ा तुमने फैलाया। इसीलिए मैंने एकांत में मिलने की प्रार्थना की थी।

ध्रुवस्वामिनी : तो क्या मैं यहाँ भी छली जाऊँगी?

शकराज : ठहरो, (nkuk dk /;ku l n[krk gvk½ क्या चिन्ता यदि मैं दोनों को ही रानी समझ लूँ?

ध्रुवस्वामिनी : ऐ····

चंद्रगुप्त : ऐ····

शकराज : क्यों? इसमें क्या बुरी बात है?

चंद्रगुप्त : जी नहीं, यह नहीं हो सकता। ध्रुवस्वामिनी कौन है, पहले इसका निर्णय होना चाहिए।

ध्रुवस्वामिनी : (Øk/k l) चन्द्रे! मेरे भाग्य के आकाश में धूमकेतु-सी अपनी गति बंद करो।

शकराज : ¼/kedr dh vkj n[kdj Hk;Hkhr-lk½ ओह भयानक! (0;x Hkko l Vgyu yxrk g½

चंद्रगुप्त : ('kdjkt dh ihB ij gkFk j[kdj) सुनिए····

ध्रुवस्वामिनी : चन्द्रे!

चंद्रगुप्त : इस धमकी से तो कोई लाभ नहीं।

ध्रुवस्वामिनी : तो फिर मेरा और तुम्हारा जीवन-मरण साथ ही होगा।

चंद्रगुप्त : तो डरता कौन है (nkuk gh 'kh?k dVkj fudky yr g½

शकराज : ¼?kcjkdj½ हैं, यह क्या? तुम लोग यह क्या कर रही हो? ठहरो! आचार्य ने ठीक कहा है, आज शुभ मुहूर्त नहीं। मैं कल विश्वसनीय व्यक्ति को बुला कर इसका निश्चय कर लूँगा। आज तुम लोग विश्राम करो।

ध्रुवस्वामिनी : नहीं, इसका निश्चय तो आज ही होना चाहिए।

शकराज : ¼chp e [kMk gkdj½ मैं कहता हूँ न।

चंद्रगुप्त : वाह रे कहने वाले!

¼/koLokfeuh ekuk pnxlr d vkØe.k l Hk;Hkhr gkdj ihN gVrh g vkj r;ukn djrh gA 'kdjkt vk'p;l ml lurk gvk lglk ?ke dj pnxlr dk gkFk idM yrk gA /koLokfeuh >Vd l pnxlr dk mÙkjh; [khp yrh g vkj pnxlr gkFk NMkdj 'kdjkt dk ?kj yrk g½

शकराज : ¼pfdr-lk½ ऐं, यह तुम कौन प्रवंचक?

चंद्रगुप्त : मैं हूँ, चंद्रगुप्त, तुम्हारा काल। मैं अकेला आया हूँ, तुम्हारी वीरता की परीक्षा लेने। सावधान!

¼'kdjkt Hkh dVkj fudky dj ;) d fy, vxlj gkrk gA ;) vkj 'kdjkt dh eR;A ckgj nxl e dkykgyA */koLokfeuh dh t;* dk gYyk epkr g, jDrkDr dyoj lkeUr dekjk dk iox'k] /koLokfeuh vkj pnxlr dk ?kj dj leor Loj l */koLokfeuh dh t; gk!*½

¼iVki{k½

rrh; vd

¼'kdA nxl d Hkhrj ,d idk"BA rhu epk e nk [kkyh vkj ,d ij /koLokfeuh iknihB d Åij ck;s ij ij nkfguk ij j[kdj v/kjk l Åxyh yxk, fpUrk e eXu cBh gA ckgj dN dkykgy gkrk g½

सैनिक : ¼iox'k djd½ महादेवी की जय हो!

ध्रुवस्वामिनी : ¼pkddj½ क्या?

सैनिक : विजय का समाचार सुनकर राजाधिराज भी दुर्ग में आ गये हैं। अभी तो वे सैनिकों से बातें कर रहे हैं। उन्होंने पूछा है महादेवी कहाँ हैं। आपकी जैसी आज्ञा हो; क्योंकि कुमार ने कहा है····।

ध्रुवस्वामिनी : अच्छा जाओ; ¼lfud dk iLFkku½।

मन्दाकिनी : ¼lglk iofs'k djds½ भाभी, बधाई हो! ¼tSls Hkwy dj xbZ gks½ नहीं; नहीं! महादेवी, क्षमा कीजिए।

ध्रुवस्वामिनी : मन्दा! भूल से ही तुमने आज एक प्यारी बात कह दी। उसे क्या लौटा लेना चाहती हो? आह! यदि वह सत्य होती?

¼iqjksfgr dk iosa'k½

मंदाकिनी : क्या इसमें भी सन्देह है?

ध्रुवस्वामिनी : मुझे तो सन्देह का bUnztky ही दिखलायी पड़ रहा है। मैं न तो महादेवी हूँ और न तुम्हारी भाभी ¼iqjksfgr dks n[kdj pqi gks tkrh g½।

पुरोहित : ¼vk'p;Z ls b/kj-m/kj ns[krk gqvk½ तब मैं क्या करूँ?

मंदाकिनी : क्यों, आपको कुछ कहना है क्या?

पुरोहित : ऐसे उपद्रवों के बाद शान्तिकर्म होना आवश्यक है। इसीलिए मैं LoLR;;u करने आया था; किंतु आप तो कहती हैं कि मैं महादेवी ही नहीं हूँ।

ध्रुवस्वामिनी : ¼rh[ks Loj e½ पुरोहित जी! मैं राजनीति नहीं जानती; किंतु इतना समझती हूँ कि जो रानी शत्रु के लिए उपहार में भेज दी जाती है, वह महादेवी की उच्च पदवी से पहले ही वंचित हो गयी होगी।

मन्दाकिनी : किंतु आप तो भाभी होना भी अस्वीकार करती हैं।

ध्रुवस्वामिनी : भाभी कहने का तुम्हें रोग हो तो कह लो। क्योंकि इन्हीं पुरोहित जी ने उस दिन कुछ मंत्रों को पढ़ा था। उस दिन के बाद मुझे कभी राजा से सरल सम्भाषण करने का अवसर ही न मिला। हाँ, न जाने मेरे किस अपराध पर lfUnX/k-fpÙk होकर उन्होंने जब मुझे निर्वासित किया, तभी मैंने उनसे अपने स्त्री होने के अधिकार की रक्षा की भीख माँगी थी। वह भी न मिली और मैं cfy-i'kq की तरह, अकरुण आज्ञा की डोरी में बँधी हुई शक-दुर्ग में भेज दी गयी। तब भी मुझे तुम भाभी कहना चाहती हो?

मन्दाकिनी : ¼fl j >dk djds½ यह xfgZr और ग्लानि-जनक प्रसंग है।

पुरोहित : यह मैं क्या सुन रहा हूँ? मुझे तो यह जान कर प्रसन्नता हुई थी कि वीर रमणी की तरह, अपने साहस के बल पर महादेवी ने इस दुर्ग पर अधिकार किया है।

ध्रुवस्वामिनी : आप झूठ बोलते हैं!

पुरोहित : ¼vk'p;Z ls½ मैं और झूठ!

ध्रुवस्वामिनी : हाँ, आप और झूठ, नहीं स्वयं आप ही मिथ्या हैं।

पुरोहित : ¼gal dj½ क्या आप वेदान्त की बात कहती हैं? तब तो संसार मिथ्या है ही।

ध्रुवस्वामिनी : ¼Øks/k ls½ संसार मिथ्या है या नहीं, यह तो मैं नहीं जानती, परंतु आप, आपका कर्मकाण्ड और आपके शास्त्र क्या सत्य हैं, जो सदैव रक्षणीया स्त्री की यह दुर्दशा हो रही है?

पुरोहित : ¼eUnkfduh ls½ बेटी! तुम्हीं बताओ, यह मेरा भ्रम है या महादेवी का रोष?

ध्रुवस्वामिनी : रोष है, हाँ मैं रोष से जली जा रही हूँ। इतना बड़ा उपहास – धर्म के नाम पर स्त्री की आज्ञाकारिता की यह iS'kkfpd परीक्षा मुझसे बलपूर्वक ली गयी है। पुरोहित! तुमने जो मेरा राक्षस-विवाह कराया है, उसका उत्सव भी कितना सुन्दर है! यह tu-lagkj देखो, अभी उस izdks"B में रक्त से सनी हुई शकराज की ykFk पड़ी होगी। कितने ही सैनिक दम तोड़ते होंगे, और इस रक्तधारा से तिरती हुई मैं राक्षसी-सी साँस ले रही हूँ। तुम्हारा स्वस्त्ययन मुझे शान्ति देगा?

स्वस्त्ययनःएक धार्मिक कृत्य जो किसी विशिष्ट कार्य में कल्याण की भावना से किया जाय। संदेह करके; सन्दिग्ध-चित्तः संदेह करके; बलि-पशुः वह पशु जिसका किसी देवता को भेंट चढ़ाने के लिए वध किया जाता है; गर्हितःबुरा; पैशाचिकःराक्षसी; जन-संहारः कत्लेआम; प्रकोष्ठः इमारत के भीतर का आँगन या कमरा; लोथः भाव।

मंदाकिनी : आर्य! आप बोलते क्यों नहीं? आप धर्म के नियामक हैं। जिन स्त्रियों को धर्म-बंधन में बाँधकर, उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते हैं, तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार – कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते, जिससे वे स्त्रियाँ अपनी आपत्ति में अवलम्ब माँग सकें? क्या भविष्य के सहयोग की कोरी कल्पना से उन्हें आप संतुष्ट रहने की आज्ञा देकर विश्राम ले लेते हैं।

पुरोहित : नहीं, स्त्री और पुरुष का परस्पर विश्वासपूर्ण अधिकार, रक्षा और सहयोग ही तो विवाह कहा जाता है। यदि ऐसा न हो तो धर्म और विवाह खेल है।

ध्रुवस्वामिनी : खेल हो या न हो, किंतु एक क्लीव पति के द्वारा ifrR;Drk नारी का मृत्यु-मुख में जाना ही मंगल है। उसे स्वस्त्ययन और शांति की आवश्यकता नहीं।

पुरोहित : ¼vk'p;Z ls½ यह मैं क्या सुन रहा हूँ? विश्वास नहीं होता। यदि ये बातें सत्य हैं, तब तो मुझे फिर एक बार धर्मशास्त्र को देखना पड़ेगा। ¼izLFkku½

¼fefgjnso dk lkFk dksek dk izos'k½

ध्रुवस्वामिनी : तुम लोग कौन हो?

कोमा : मैं पराजित शक-जाति की एक बालिका हूँ।

ध्रुवस्वामिनी : और

कोमा : और मैंने प्रेम किया था।

ध्रुवस्वामिनी : इस घोर अपराध का तुम्हें क्या दण्ड मिला?

कोमा : वही, जो स्त्रियों को प्रायः मिला करता है - निराशा, fu"ihM+u और उपहास!! रानी, मैं तुमसे भीख माँगने आयी हूँ।

ध्रुवस्वामिनी : शत्रुओं के लिए मेरे पास कुछ नहीं है। अधिक हठ करने पर दण्ड मिलना भी असम्भव नहीं।

मिहिरदेव : ¼nh?kZ fu'okl ysdj½ पागल लड़की, हो चुका न? अब भी तू न चलेगी?

¼dksek flj >qdk ysrh g½

मंदाकिनी : तुम चाहती क्या हो?

कोमा : रानी तुम भी स्त्री हो। क्या स्त्री की व्यथा न समझोगी? आज तुम्हारी विजय का अंधकार तुम्हारे 'kk'or स्त्रीत्व को ढँक ले, किंतु सबके जीवन में एक बार प्रेम की दीपावली जलती है। जली होगी अवश्य। तुम्हारे भी जीवन में वह vkyksd का महोत्सव आया होगा, जिसमें हृदय-हृदय को पहचानने का प्रयत्न करता है, उदार बनता है और loZLo दान करने का उत्साह रखता है। मुझे शकराज का भाव चाहिए।

ध्रुवस्वामिनी : ¼lkp dj½ जलो, प्रेम के नाम पर जलना चाहती हो तो तुम उस भाव को ले जा कर जलो। जीवित रहने पर मालूम होता है कि तुम्हें अधिक शीतलता मिल चुकी है। अवश्य तुम्हारा जीवन धन्य है। ¼lfud ls½ इसे ले जाने दो।

¼dksek dk izLFkku½

मंदाकिनी : स्त्रियों के इस बलिदान का भी कोई मूल्य नहीं। कितनी असहाय दशा है। अपने निर्बल और voyEc खोजने वाले हाथों से यह पुरुषों के चरणों को पकड़ती हैं और वह सदैव ही इनको frjLdkj] घृणा और दुर्दशा की भिक्षा से miÑr करता है। तब भी यह बावली मानती है?

ध्रुवस्वामिनी : भूल है - भ्रम है। ¼Bgj dj½ किंतु उसका कारण भी है। पराधीनता की एक परंपरा-सी उनकी नस-नस में – उनकी चेतना में न जाने किस युग से घुस गयी है। उन्हें समझ कर भी भूल करनी पड़ती है। क्या वह मेरी भूल न थी– जब मुझे निर्वासित किया गया, तब मैं अपनी vkRe-e;kZnk के लिए कितनी तड़प रही थी और राजाधिराज रामगुप्त के चरणों में रक्षा के लिए गिरी; पर कोई उपाय चला? नहीं। पुरुषों की प्रभुता का जाल मुझे अपने निर्दिष्ट पथ पर ले ही आया। मन्दा! दुर्ग की विजय मेरी सफलता है या मेरा दुर्भाग्य इसे मैं नहीं समझ सकी हूँ। राजा से मैं सामना नहीं चाहती। पृथ्वी-तल से जैसे

पतित्यक्ताःपति द्वारा त्यागी हुई; निष्पीड़नःशोषण; शाश्वतःजो सदा स्थायी है; आलोकःप्रकाश; सर्वस्वःसब कुछ; अवलम्बःसहारा, आश्रय; तिरस्कारःअपमान, अनादर; उपकृतःजिसका उपकार किया गया होगा; आत्म-मर्यादाः आत्म-सम्मान।

एक साकार घृणा निकल कर मुझे अपने पीछे लौट चलने का संकेत कर रही है। क्यों, क्या यह मेरे मन का कलुष है? क्या मैं मानसिक पाप कर रही हूँ?

¼mUeÙk Hkko ls iLFkku½

मंदाकिनी : नारी-हृदय, जिसके मध्य बिंदु से सट कर, शास्त्र का एक मन्त्र कील की तरह गड़ गया है और उसे अपने सरल प्रवर्त्तन-चक्र में घूमने से रोक रहा है। निश्चय ही वह कुमार चंद्रगुप्त ही अनुरागिनी है।

चन्द्रगुप्त : ¼lgla izos'k djd½ कौन? - मन्दा!

मन्दाकिनी : अरे कुमार! अभी थोड़ा विश्राम करते।

चंद्रगुप्त : ¼cBrs gq,½ विश्राम! मुझे कहाँ विश्राम? मैं अभी से प्रस्थान करने वाला हूँ। मेरा कर्त्तव्य पूर्ण हो चुका। यहाँ मेरा ठहरना अच्छा नहीं।

मंदाकिनी : किंतु, भाभी की जो बुरी दशा है।

चंद्रगुप्त : क्यों, उन्हें क्या हुआ? ¼eankfduh pqi jgrh g½ बोलो, मुझे अवकाश नहीं! राजाधिराज का सामना होते ही क्या हो जायेगा - मैं नहीं कह सकता। क्योंकि अब यह राजनीतिक छल-प्रपंच मैं नहीं सह सकता।

मंदाकिनी : किंतु, उन्हें इस असहाय अवस्था में छोड़कर आपका जाना क्या उचित होगा? और···· ¼pqi jg tkrh g½

चंद्रगुप्त : और क्या? वहीं क्यों नही कहती हो?

मंदाकिनी : तो क्या उसे भी कहना होगा? महादेवी बनने के पहले ध्रुवस्वामिनी का जो मनोभाव था, वह क्या आप से छिपा है?

चंद्रगुप्त : किंतु मंदाकिनी! उसकी चर्चा करने से क्या लाभ?

मंदाकिनी : हृदय में नैतिक साहस - वास्तविक प्रेरणा ओर पौरुष की पुकार एकत्र करके सोचिए तो कुमार, कि अब आपको क्या करना चाहिए? ¼pnzxqIr fpfUrr Hkko ls Vgyus yxrk gSA uiF; esa dqN ykxksa ds vkus&tkus dk 'kCn vkj dksykgy½ देखूँ तो यह क्या है? और महादेवी कहाँ गयी? ¼iLFkku½

चंद्रगुप्त : fo/kku की स्याही का एक बिंदु गिर कर भाग्य-लिपि पर कालिमा चढ़ा देता है। मैं आज यह स्वीकार करने में भी संकुचित हो रहा हूँ कि ध्रुवदेवी मेरी है। ¼Bgj dj½ हाँ, वह मेरी है। उसे मैंने आरंभ से ही अपनी सम्पूर्ण भावना से प्यार किया है। मेरे हृदय के गहन vUrLry से निकली हुई यह मूक स्वीकृति आज बोल रही है। मैं पुरुष हूँ? नहीं, मैं अपनी आँखों से अपना वैभव और अधिकार दूसरों को अन्याय से छीनते देख रहा हूँ। और मेरी okXnÙkk पत्नी मेरे ही अनुत्साह से आज मेरी नहीं रही। नहीं, यह शील का कपट, मोह और प्रवंचना है। मैं जो हूँ, वही तो नहीं स्पष्ट रूप से प्रकट कर सका। यह कैसी विडम्बना है! विनय के आवरण में मेरी कायता अपने को कब तक छिपा सकेगी?

¼,d vksj ls /kzqoLokfeuh vkSj nljh vksj ls eUnkfduh dk izos'k½

मंदाकिनी : शकराज का भाव लेकर जाते हुए आचार्य और उसकी कन्या का राजाधिराज के साथी सैनिकों ने वध कर डाला!

ध्रुवस्वामिनी : ¼nljh vksj ls izos'k djd½ ऐं।

¼lkeUr dqekjksa dk izos'k½

सामन्त कुमार : ¼lc ,d lkFk gh½ स्वामिनी! आपकी आज्ञा के विरुद्ध राजाधिराज ने निरीह शकों का संहार करवा दिया है।

ध्रुवस्वामिनी : फिर आप लोग इतने चंचल क्यों हैं? राजा को आज्ञा देनी चाहिए और प्रजा को ur-eLrd होकर उसे मानना होगा।

सामंत कुमार : किंतु अब यह असह्य है। jkt lÙkk ds vfLrRo की घोषणा के लिए इतना भयंकर प्रदर्शन। मैं तो कहूँगा, इस दुर्ग में आपकी आज्ञा के बिना राजा का आना अन्याय है।

विधानःनियम; अन्तस्तलःआन्तरिक भाग, गहन अन्तस्तलःअनन्त गहराई; वाग्दत्ताःवह कन्या जिसके विवाह की बात किसी के साथ तय की जा चुकी हो; नत-मस्तकःसिर-झुकाकर; राजसत्ताःराजशक्ति, राज्य की सत्ता; अस्तित्वःमौजूदगी होना।

ध्रुवस्वामिनी : मेरे वीर सहायकों! मैं तो स्वयं एक परित्यक्ता और grHkkfxuh स्त्री हूँ। मुझे तो अपनी स्थिति की कल्पना से भी {kkHk हो रहा है। मैं। क्या कहूँ?

सामंत कुमार : मैं सच कहता हूँ, रामगुप्त-जैसे राजपद को कलुषित करने वाले के लिए मेरे हृदय में तनिक भी श्रद्धा नहीं। विजय का उत्साह दिखाने यहाँ वे किस मुँह से आये हैं, जो हिंसक, ik[k.Mh] {kho और Dyho हैं।

रामगुप्त : ¼lglk f'k[kjLokeh d: lkFk io'k djd½ क्या कहा? फिर से तो कहना!

सामंत कुमार : गुप्त-काल के गौरव को कलंक-कालिमा के सागर में fuefTtr करने वाले!

शिखरस्वामी : ¼mlu chp gh e: jkddj½ चुप रहो! क्या तुम लोग किसी के cgdku: से आवेश में आ गये हो? ¼pnxlr dh vkj n[kdj½ कुमार! यह क्या हो रहा है?

¼pUnxlr mUkj nu: dh p"Vk djd: p|i jg tkrk g½

रामगुप्त : nfouhr] पाखण्डी, ikejk, तुम्हें इस धृष्टता का क्रूर दंड भोगना पड़ेगा। ¼uiF; dh vkj n[kdj½ इन विद्रोहियों को बंदी करो।

¼jkexlr d: lfud vkdj lkeUr dekjk dk cUnh cukr: g|A jkexlr dk l:dr ik dj lfud ykx pUnxlr dh vkj Hkh c<r: g: vkj pnxlr J:[kyk e: c/k tkrk g½

ध्रुवस्वामिनी : कुमार! मैं कहती हूँ कि तुम ifrokn करो। किस अपराध के लिए यह दण्ड ग्रहण कर रहे हो?

¼pnxlr ,d nh?k fu'okl ydj p|i jg tkrk g½

रामगुप्त : ¼gldj½ कुचक्र करने वाले क्या बोलेंगे?

ध्रुवस्वामिनी : और जो लोग बोल सकते हैं, जो अपनी पवित्रता की nUnHkh ctkr: हैं, वे सब-के-सब साधु होते हैं न? ¼pnxlr l½ कुमार! तुम्हारी जिह्वा पर कोई बंधन नहीं। कहते क्यों नहीं कि मेरा यही अपराध है कि मैंने कोई अपराध नहीं किया?

रामगुप्त : महादेवी!

ध्रुवस्वामिनी : ¼mlu u lur: g, pnxlr½ झटक दो इन ykg-J:[kykvk को! यह मिथ्या ढोंग कोई नहीं सहेगा। तुम्हारा Ø) nno भी नहीं।

रामगुप्त : ¼MkV dj½ महादेवी! चुप रहो!

ध्रुवस्वामिनी : ¼r:tfLork l½ कौन महादेवी! राजा, क्या अब भी मैं महादेवी ही हूँ? जो, शकराज की शय्या के लिए Øhrnklh की तरह भेजी गयी हो वह भी महादेवी! आश्चर्य!

शिखरस्वामी : देवी, इस राजनीतिक चातुरी में जो सफलता····।

ध्रुवस्वामिनी : ¼ij iVd dj½ चुप रहो। प्रवंचना के पुतले! स्वार्थ के घृणित i:ip चुप रहो।

रामगुप्त : तो तुम महादेवी नहीं हो न?

ध्रुवस्वामिनी : नहीं। मनुष्य की दी हुई उपाधि में लौटा देती हूँ।

रामगुप्त : और मेरी lg/kfe.kh?

ध्रुवस्वामिनी : धर्म ही इसका निर्णय करेगा!

रामगुप्त : ऐं, क्या इसमें भी संदेह!

ध्रुवस्वामिनी : उसे अपने हृदय से पूछिए कि क्या मैं वास्तव में सहधर्मिणी हूँ?

¼ijkfgr dk io'k] lkeu: lcdk n[kdj pkd mBrk gA f'k[kjLokeh mlu: py: tku: dk l:dr djrk g½

पुरोहित : नहीं, मैं नहीं जाऊँगा। प्राणि-मात्र के अन्तस्त में जाग्रत रहने वाले महान् विचारक धर्म की आज्ञा, मैं न टाल सकूँगा। अभी जो प्रश्न अपनी गम्भीरता से भीषण होकर आप लोगों को विचलित कर रहा है, मैं ही उसका उत्तर देने का अधिकारी हूँ। विवाह का धर्मशास्त्र से घनिष्ट सम्बन्ध है।

ध्रुवस्वामिनी : आप सत्यवादी ब्राह्मण हैं। कृपा करके बतलाइए····।

हतभागिनीःभाग्यहीन; क्षोभःक्रोध मिश्रित दुःख; पाखंडीःधोखेबाज, धूर्त; क्षीवःउन्मन, मद में अंधा (मंदांध); क्लीवःकायर; निमज्जितःडुबोना; बहकानेःबातों में फुसलाना; दुर्विनीतः अशिष्ट; पामरोःदुष्ट, पाजी, नीच, प्रतिवादःविरोध; दुन्दुभी बजातेःनगाड़ा बजाना (यहाँ इसका प्रयोग मुहावरे के रूप में हुआ है और तारीफ करने से है। बोलचाल की भाषा में अक्सर ''डंका पीटना'' पद का इस्तेमाल किया जाता है); लौह-श्रृंखलाओंःलोहे की जंजीरें; क्रुद्ध दुर्दैवःदुर्भाग्य; क्रीतदासीःखरीदी हुई दासी; प्रपंचःछल; सहधर्मिणीःपत्नी।

शिखरस्वामी : ¼fou; lml jkddj½ मैं समझता हूँ कि यह विवाद अधिक बढ़ाने से कोई लाभ नहीं!

ध्रुवस्वामिनी : नहीं, मेरी इच्छा इस विवाद का अंत करने की है। आज यह निर्णय हो जाना चाहिए कि मैं कौन हूँ।

रामगुप्त : ध्रुवस्वामिनी, निर्लज्जता की भी एक सीमा होती है।

ध्रुवस्वामिनी : मेरी निर्लज्जता का दायित्व क्लीव कापुरुष पर है। स्त्री की लज्जा लूटने वाले दस्यु के लिए मैं ....।

रामगुप्त : ¼jkddj½ चुप रहो! तुम्हारा पर-पुरुष में vuqjDr हृदय अत्यंत कलुषित हो गया है। तुम काल-सर्पिणी-सी स्त्री! ओह, तुम्हें धर्म का तनिक भी भय नहीं। शिखर! इसे भी बंदी करो।

पुरोहित : ठहरिए! महाराज, ठहरिए! धर्म की ही बात मैं सोच रहा था।

शिखरस्वामी : ¼Øks/k ls½ मैं कहता हूँ कि तुम चुप न रहोगे, तो तुम्हारी भी यही दशा होगी।

¼lSfud vkxs c<rk g½

मन्दाकिनी : ¼mls jksd dj½ महाराज, iq#"kkFkZ का इतना बड़ा प्रहसन! अबला पर ऐसा अत्याचार!!! यह गुप्त-सम्राट के लिए शोभा नहीं देता।

रामगुप्त : ¼lSfud ls½ क्या देखते हो जी!

¼lSfud vkxs c<rk g vkSj pUnzxqIr vkos'k esa vkdj ykSg-Jà[kyk rksM Mkyrk gSA lc vk'p;Z vkSj Hk; ls n[krs g½

चंद्रगुप्त : मैं भी आर्य समुद्रगुप्त का पुत्र हूँ। और शिखरस्वामी, तुम यह अच्छी तरह जानते हो कि मैं ही उनके द्वारा निर्वाचित युवराज भी हूँ। तुम्हारी नीचता अब vlg; है। तुम अपने राजा को लेकर इस दुर्ग से सकुशल बाहर चले जाओ। यहाँ अब मैं ही शकराज के समस्त अधिकारों का स्वामी हूँ।

रामगुप्त : ¼Hk;Hkhr gksdj pkjks vksj n[krk gvk½ क्यों?

ध्रुवस्वामिनी : ¼pUnzxqIr ls½ यही तो कुमार!

चंद्रगुप्त : ¼lSfudks dks MiV dj½ इन सामन्त कुमारों को मुक्त करो!

¼lSfud oSlk gh djrs g vkSj f'k[kjLokeh ds ladsr ls jkexqIr /khj-/khjs Hk; ls ihN gVrk gvk ckgj pyk tkrk g½

शिखरस्वामी : कुमार! इस कलह को मिटाने के लिए हम लोगों को परिषद् का निर्णय माननीय होना चाहिए। मुझे आपके vf/kiR; से कोई विरोध नहीं है, किन्तु सब काम विधान के अनुकूल होना चाहिए। मैं dqy-o)ksa को और सामन्तों को, जो यहाँ उपस्थित हैं, लिवा लाने जाता हूँ।

¼iLFkku½

¼lSfud ykx vkSj Hkh ep y vkrs g vkSj lkeUr dekj viu [kMxks dk [khpdj pUnzxqIr ds ihN [kM gks tkrs gSA /koLokfeuh vkSj pUnzxqIr ijLij ,d nljs dk n[krs g, [kM jgrs gSA ifj"kn ds lkFk jkexqIr dk izns'kA lc ykx ep ij cBrs g½

पुरोहित : कुमार! आसन ग्रहण कीजिए।

चंद्रगुप्त : मैं अभियुक्त हूँ।

शिखरस्वामी : बीती हुई बातों को भूल जाने में ही भलाई है। भाई-भाई की तरह गले से लग कर गुप्त-कुल का गौरव बढ़ाइए।

चंद्रगुप्त : अमात्य, तुम गौरव किसको कहते हो? वह है कहीं? रोग-जर्जर शरीर पर vyadkjksa की सजावट, efyurk और कलुष की ढेरी पर बाहरी कुंकुम-केसर का लेप गौरव नहीं बढ़ाता। dqfVyrk की ifrefrZ बोलो! मेरी वाग्दत्ता पत्नी और पिता-द्वारा दिए हुए मेरे सिंहासन का vigj.k किसके संकेत से हुआ? और छल से....।

रामगुप्त : यह उन्मक्त iyki बन्द करो। चंद्रगुप्त तुम मेरे भाई ही हो न! मैं तुमको क्षमा करता हूँ।

अनुरक्तःअनुराग युक्त, प्रेमरत; पुरुषार्थःपौरुष, पराक्रम, शक्ति, सामर्थ्य; असह्यःन सहने योग्य; अधिपत्यः प्रभुत्व; कुल-वृद्धोंःपरिवार के बुजुर्ग; अलंकारोंःआभूषण; मलिनताःमैल; कुटिलताःचालबाजी, दुष्टता; प्रतिपूर्तिःप्रतिमा; अपहरणःछीन लेना; प्रलापःनिरर्थक बात, बकवास।

चंद्रगुप्त : मैं उसे मांगता नहीं और क्षमा देने का अधिकार भी तुम्हारा नहीं रहा। आज तुम राजा नहीं हो। तुम्हारे पाप प्रायश्चित की पुकार कर रहे हैं। न्यायपूर्ण निर्णय के लिए प्रतीक्षा करो और vfHk;Dr बनकर अपने अपराधों को सुनो।

मन्दाकिनी : ¼/kzoLokfeuh dk vkxs [khap dj½ यह है गुप्तकुल की वधू।

रामगुप्त : मन्दा!

मन्दाकिनी : राजा के भय, मन्दा का गला नहीं घोंट सकता। तुम लोगों को यदि कुछ भी बुद्धि होती, तो इस अपनी कुल-मर्यादा, नारी को, शत्रु के दुर्ग में यों न भेजते। भगवान् ने स्त्रियों को उत्पन्न करते ही अधिकारों से ofpr नहीं किया है। किंतु तुम लोगों की nL;q-ofÙk ने उन्हें लूटा है। इस परिषद् में मेरी प्रार्थना है कि आर्य समुद्रगुप्त का विधान तोड़ कर जिन लोगों ने jkt-fdfYo"k किया हो उन्हें दण्ड मिलना चाहिए।

शिखरस्वामी : तुम क्या कर रही हो?

मंदाकिनी : मैं तुम लोगों की नीचता की गाथा सुना रही हूँ। अनार्य! सुन नहीं सकते? तुम्हारी प्रवंचनाओं ने जिस नरक की सृष्टि की है उसका अन्त समीप है। वह साम्राज्य किसका है? आर्य समुद्रगुप्त ने किसे युवराज बनाया था? चंद्रगुप्त को या इस क्लीव रामगुप्त को जिसने छल और बल से विवाह करके भी इस नारी को अन्य पुरुष की अनुरागिनी बताकर दण्ड देने के लिए आज्ञा दी है। वही रामगुप्त, जिसने कापुरुषों की तरह इस स्त्री को शत्रु के दुर्ग में बिना विरोध किये भेज दिया था, तुम्हारे गुप्त साम्राज्य का सम्राट है! और वह ध्रुवस्वामिनी! जिसे कुछ दिनों तक तुम लोगों ने महादेवी कह कर सम्बोधित किया है, वह क्या है? कौन है? और उसका कैसा अस्तित्व है? कहीं /keZ'kkL= हो तो उसका मुँह खुलना चाहिए।

पुरोहित : शिखर, मुझे अब भी बोलने दोगे या नहीं। मैं राज्य के संबंध में कुछ नहीं कहना चाहता। वह तुम्हारी राजनीति जाने। किंतु इस विवाह के संबंध में तो मुझे कुछ कहना ही चाहिए।

गुप्तकुल का एक वृद्ध – कहिए देव, आप ही तो धर्मशास्त्र के मुख हैं।

पुरोहित : विवाह की विधि ने देवी ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त को एक भ्रान्तिपूर्ण बन्धन में बाँध दिया है। धर्म का उद्देश्य इस तरह innfyr नहीं किया जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म-विवाह केवल परस्पर द्वेष से टूट नहीं सकते; परंतु यह संबंध उन प्रमाणों से भी विहीन है। और भी ¼jkexqIr dk n[kdj½ यह रामगुप्त मृत और iofTkr तो नहीं; पर गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्मों से राजकिल्विषी क्लीव है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं।

रामगुप्त : ¼[kM~x gkFk esa ysdj½ मूर्ख! तुमको मृत्यु का भय नहीं!

पुरोहित : तनिक भी नही! ब्राह्मण केवल-धर्म से भयभीत है। अन्य किसी भी शक्ति को वह तुच्छ समझता है। तुम्हारे बधिक मुझे धार्मिक सत्य कहने से रोक नहीं सकते। उन्हें बुलाओ, मैं प्रस्तुत हूँ।

मंदाकिनी : धन्य हो ब्रह्मदेव!

शिखरस्वामी : किंतु निर्भीक पुरोहित, तुम क्लीव शब्द का प्रयोग कर रहे हो!

पुरोहित : ¼gldj½ राजनीतिक दस्यु! तुम शास्त्रार्थ न करो। क्लीव! श्रीकृष्ण ने अर्जुन को क्लीव किसलिए कहा था? जिसे अपनी स्त्री को दूसरे की अंकगामिनी बनने के लिए भेजने में कुछ संकोच नहीं, वह क्लीव नहीं तो और क्या है? मैं स्पष्ट कहता हूँ कि धर्मशास्त्र रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता है। परिषद् के सब लोग – अनार्य, ifrr और क्लीव रामगुप्त, गुप्त साम्राज्य के पवित्र राज्य-सिंहासन पर बैठने का अधिकारी नहीं।

अभियुक्तः जिस पर किसी अपराध का अभियोग लगाया गया हो, मुल्जिम; वंचितःहीन, रहित; दस्यु-वृत्तिःडाकू का पेशा, लुटेरापन; राज-किल्विषःराजनीतिक अपराध; धर्मशास्त्रःवह प्राप्त ग्रंथ जिसमें मनुष्य के कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, दाय-विधान आदि की व्यवस्था हो (मनु, यज्ञवल्वय आदि स्मृतियाँ); पददलितःपैरों के नीचे कुचलना, नष्ट-भ्रष्ट; प्रवर्जितः जो बाहर चला गया हो; पतितः आचार से भ्रष्ट व्यक्ति।

रामगुप्त : ¼l'kd vkj Hk;Hkhr-lk b/kj-m/kj n[kdj½ तुम सब पाखण्डी हो, विद्रोही हो। मैं अपने न्यायपूर्ण अधिकार को तुम्हारे-जैसे कुत्तों के भौंकने पर न छोड़ दूँगा।

शिखरस्वामी : किंतु परिषद् का विचार तो मानना ही होगा।

रामगुप्त : ¼jku d Loj e½ शिखर! तुम भी ऐसा कहते हो? नहीं, मैं यह न मानूँगा।

ध्रुवस्वामिनी : रामगुप्त तुम अभी इस दुर्ग के बाहर जाओ।

रामगुप्त : ऐं! यह परिवर्तन? तो मैं सचमुच क्लीव हूँ क्या?

¼/khj-/khj gVrk gvk pUnxlr d ihN igpdj mls dVkj fudky dj ekjuk pkgrk g pUnxlr dk foiUu n[kdj dN ykx fpYyk mBr gA tc rd pnxlr ?kerk g rc rd ,d lkeUr dekj jkexlr ij *igkj* djdk pnxlr dh j{kk dj yrk g(jkexlr fxj iMrk g½

सामंत कुमार : राजाधिराज चंद्रगुप्त की जय!

परिषद् : महादेवी ध्रुवस्वामिनी की जय!

¼iVk{ki½

ck/k i'u

1. ध्रुवस्वामिनी से रामगुप्त की पहली बार बातचीत कब होती है?

....

....

....

2. शकराज ने क्या संधि-प्रस्ताव भेजा है?

....

....

....

3. चंद्रगुप्त ने ध्रुवस्वामिनी की रक्षा का क्या उपाय सोचा है?

....

....

4. पुरोहित तथा परिषद् के सदस्य क्या निर्णय देते हैं?

....

....

....

निम्नलिखित वाक्यों को पढ़िए और बताइए कि वे किस पात्र के वचन हैं और उसने वह वचन क्यों कहे हैं?

5. ''किन्तु मेरा नीड़ कहाँ है? यह तो स्वर्ग-पिंजर है?''

....

....

....

6. ''हाँ यह तो बताओ, तुम्हारे राजकुल में नियम क्या है? पहले अमात्य की मंत्रणा सुननी पड़ती है फिर राजा से भेंट होती है?''

....

....

....

7. शकराज क्या मुझे देवी बना कर भक्तिभाव से मेरी पूजा करेगा। वाह रे लज्जाशील पुरुष!

....

....

....

प्रहारः वार, आघात।

8. वह देखो, नील, लोहित रंग का धूमकेतु अविचल भाव से इस दुर्ग की ओर कैसा भयानक संकेत कर रहा है?

....

....

....

....

9. उसे अपने हृदय से पूछिए क्या मैं वास्तव में सहधर्मिणी हूँ।

....

....

....

....

27-3 lnHkZ lfgr O;k[;k

m)j.k 1

''निर्लज्ज! मद्यप!! क्लीव!!! ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं? (ठहर कर) नहीं, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी। मैं उपहार में देने की वस्तु, शीतल-मणि नहीं हूँ। मुझमें रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय ऊष्ण है और उसमें आत्म-सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी।

lnHkZ

प्रस्तुत पंक्तियाँ श्री जयशंकर 'प्रसाद' के नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' से ली गई हैं। 'प्रसाद' जी हिंदी के प्रमुख नाटककार हैं। उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सांस्कृतिक नाटकों की रचना की है। प्रस्तुत नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' गुप्तयुगीन इतिहास से संबंधित है।

izlax

सम्राट समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उनका बड़ा पुत्र रामगुप्त सिंहासन पर बैठा और उसका विवाह ध्रुवस्वामिनी से हुआ। रामगुप्त में सुयोग्य शासक के सभी गुणों का अभाव है। मद्यपान और भोग-विलास ही उसके जीवन का लक्ष्य है। महादेवी ध्रुवस्वामिनी के प्रति भी उसका व्यवहार अपमानजनक है। उसे शंका है कि महादेवी के हृदय में कुमार चंद्रगुप्त के प्रति प्रेम भाव है। उसी समय सूचना मिलती है कि उनके शिविर को शकों ने घेर लिया है बाहर निकलने का कोई मार्ग नहीं है। अब दो ही रास्ते रह गए हैं या तो युद्ध करके शकों को पराजित किया जाए या फिर उनका संधि-प्रस्ताव स्वीकार किया जाए। संधि के प्रमाणस्वरूप शकराज ने महादेवी ध्रुवस्वामिनी को माँगा है। कायर रामगुप्त में युद्ध करने का साहस और पराक्रम तो नहीं है। किंतु उसे राजसिंहासन का लोभ है। किसी भी कीमत पर राजाधिराज बना रहना चाहता है। वह संधि की शर्त स्वीकार करने को तैयार हो गया है। ध्रुवस्वामिनी को यह सुनकर अत्यंत कष्ट होता है। वह रामगुप्त को ध्यान दिलाती है कि अपनी पत्नी को उपहार में देने में उसका अपना ही अपमान है किंतु रामगुप्त पर कोई असर नहीं होता। वह रक्षा की भीख माँगती है, अनुरोध करती है कि अपना अहं त्याग कर वह राजा के विलास की सहचरी बनने को प्रस्तुत है। किंतु कायर रामगुप्त किसी भी कीमत पर शकराज से युद्ध में मुकाबला नहीं करना चाहता क्योंकि उसे दुनिया में सबसे ज्यादा अपने प्राण प्यारे हैं। भले ही सम्मान रहे या न रहे। वह अपने प्राणों को संकट में नहीं डाल सकता। इसलिए उसका आदेश है कि ध्रुवस्वामिनी को शकराज के पास जाना ही होगा। असहाय अवस्था में विवश ध्रुवस्वामिनी क्षोभ, क्रोध और घृणा से तिलमिला उठती है।

O;k[;k

अपमान से आहत और परिस्थितियों से विवश ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त से कटु वचन कहती है। बेशर्म, कायर, नपुंसक और मद्यप संबोधनों का प्रयोग करके वह अपना क्रोध प्रकट करती है। एक जागरूक साहसी स्त्री की भाँति वह अपने प्रति हो रहे अपमान और अन्याय का विरोध करती है। रामगुप्त के आचरण की निंदा करती है। एक क्षण के लिए उसमें बेबसी दिखाई देती है, जब वह कहती है : ''ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं।'' तुरंत ही उसका आत्म-विश्वास जागता

है। वह दृढ़ता से कहती है कि वह स्वयं अपनी रक्षा करेगी। बौद्धिक रूप से जागरूक आधुनिक स्त्री की भाँति वह कहती है कि वह कोई निर्जीव वस्तु नहीं जिसे उपहार में दे दिया जाए। वह कोई शीतलता प्रदान करने वाला रत्न भी नहीं है जिसे कोई व्यक्ति जब चाहे दूसरे को दे दे! 'शीतल मणि' से तात्पर्य ऐसी चीज़ से है जो किसी व्यक्ति के सुख और आराम के लिए उसे उपलब्ध कराई जाए। जब वह कहती है कि उसमें रक्त की तरल लालिमा है; यानी वह मनुष्य है, उसके साथ बेजान चीज़ों जैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता तो इसका तात्पर्य है कि स्त्री होने के नाते वह केवल पुरुष की विलासिता का साधन नहीं है जिसे उपहार के रूप में दिया जाए। व्यक्ति के रूप में उसकी अपनी स्वतंत्रता की रक्षा होनी चाहिए। यह उसका मानवीय अधिकार है। मनुष्य और बेजान चीज़ों में क्या अंतर है? यही न कि मनुष्य सुख-दुख, मान-अपमान अनुभव करता है, उसमें सोचने विचारने की शक्ति है क्योंकि उसके पास हृदय होता है। हृदय ऊष्ण होने का अर्थ है कि हृदय में भाव की ऊष्मा है। आत्मसम्मान उस पवित्र ज्योति की तरह होता है जो मनुष्य को व्यक्ति के रूप में अपनी सार्थकता का अहसास कराता है। उसमें श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों का संचार करता है जिसकी ध्रुवस्वामिनी रक्षा करना चाहती है। आत्मसम्मान की रक्षा के लिए जब किसी अन्य व्यक्ति की सहायता नहीं मिलती तो वह स्वयं ही अपनी रक्षा का दृढ़ निश्चय करती है।

fo'ys"k.k

1) इस गद्यांश में ध्रुवस्वामिनी के हृदय के कई भावों – क्रोध, विवशता और आत्मविश्वास – को एक साथ प्रस्तुत किया गया है। मानवीय मनोविज्ञान की दृष्टि से यह बहुत स्वाभाविक चित्रण है।
2) इससे ध्रुवस्वामिनी के चरित्र की विशेषता अर्थात् उसके विश्वास और दृढ़ता का पता चलता है।
3) ध्रुवस्वामिनी का यह कथन लेखक के आधुनिक भावबोध का सूचक है।
4) ध्रुवस्वामिनी के इस कथन में आधुनिक भारतीय नारी जागरण का संकेत भी मिलता है।
5) यहाँ भाषा संस्कृतनिष्ठ तथा सांकेतिक है। ''शीतल-मणि'', ''रक्त की तरल लालिमा'' आदि बिंब-बहुल शब्दों ने भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का विस्तार किया है। यानी ये शब्द हमारी कल्पना में एक तरह का भाव-चित्र प्रस्तुत करते हैं।

m)j.k 2

''राजनीति? राजनीति ही मनुष्यों के लिए सब कुछ नहीं। राजनीति के पीछे नीति से भी हाथ न धो बैठो, जिसका विश्व मानव के साथ व्यापक संबंध है। राजनीति की साधारण छलनाओं से सफलता प्राप्त करके क्षण भर के लिए तुम अपने को चतुर समझ लेने की भूल कर सकते हो। परंतु इस भीषण संसार में प्रेम करने वाले हृदय को खो देना, सबसे बड़ी हानि है। शकराज! दो प्यार करने वाले हृदयों के बीच में स्वर्गीय ज्योति का निवास है।''

lnHkZ % iFke m)j.k esa fn;k lnHkZ

....
....
....
....
....
....
....

i:lx

शकराज ने अपने संधि-प्रस्ताव में रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी की माँग की थी। उसे खिंगल से पता चलता है कि ध्रुवस्वामिनी आ गई है तो वह अपनी विजय के प्रमाद में कोमा की उपेक्षा करता है। कोमा और मिहिरदेव समझाते हैं कि गुप्त सम्राट का गर्व चूर करने के लिए किसी स्त्री का सम्मान नष्ट करना उचित नहीं। मिहिरदेव ध्यान दिलाते हैं कि शकराज का ऐसा करना अपनी भावी पत्नी (कोमा) के प्रति अत्याचार होगा। किंतु शकराज अपने राजनीतिक कार्यों में मिहिरदेव का हस्तक्षेप नहीं चाहता। फिर भी मिहिरदेव उसे सही मार्ग पर चलने की सलाह देते हुए आगाह करते हैं।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

0;k[;k

यहाँ मिहिरदेव मानवतावादी मूल्यों को जीवन में सर्वोच्च स्थान प्रदान करने की प्रेरणा देते हैं। इसलिए वे कहते हैं कि अपने आप में महत्त्वपूर्ण होते हुए भी राजनीति मनुष्य के लिए सब कुछ नहीं है। वह एक साधन हो सकती है किंतु साध्य नही। राजनीति को जीवन का लक्ष्य मान लेने पर मनुष्य नीति यानी उन बृहत्तर जीवन मूल्यों से कट जाता है, जो संपूर्ण मानवता के लिए कल्याणप्रद हैं। इसलिए वे शकराज को सावधान करते हैं कि राजनीति के पीछे कहीं नीति से हाथ न धो बैठना। नीति को अपनाने पर व्यक्ति ऐसा व्यवहार करेगा जिससे उसकी अपनी भलाई हो और किसी दूसरे का भी अहित न हो। यदि नीति का पालन नहीं होगा तो समाज में सदाचरण और सद्व्यवहार समाप्त हो जाएगा। जीवन के वे उच्चतर मूल्य समाप्त हो जाएँगे जो मनुष्यता को गरिमा प्रदान करते हैं। राजनीति के सामान्य छल-कपट के माध्यम से सफलता पाकर थोड़ी देर के लिए मनुष्य अपने को बहुत समर्थ ओर कुशल समझ सकता है। किंतु यह उसकी भूल होगी क्योंकि यह सफलता उसके जीवन की चरम उपलब्धि नहीं है। अन्य सहयोगी मनुष्यों का विश्वास और स्नेह पा सकना जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि है क्योंकि एक-दूसरे से आगे बढ़ जाने की स्पर्धा में मनुष्य नीति को छोड़ कर छल-कपटपूर्ण मार्ग अपनाने लगता है। छल-कपट के कारण भयंकर जान पड़ने वाले इस संसार में किसी प्रेम करने वाले व्यक्ति को खोना सबसे बड़ी हानि है। निष्कपट प्रेम करने वाले व्यक्ति मुश्किल से मिलते हैं इसीलिए उनका विश्वास-भंग करना जीवन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि को खो देना है। मिहिरदेव शकराज को उचित मार्ग दिखाते हुए कहते हैं कि दो प्रेम करने वाले हृदयों के बीच स्वर्गीय ज्योति विद्यमान रहती है। उनके बीच कोई छल-कपट राग-द्वेष या स्वार्थ नहीं होता, प्रवंचना का कोई आवरण नहीं होता। स्वर्गीय ज्योति से यहाँ किसी दिव्य अथवा अलौलिक चीज़ का बोध नहीं कराया गया बल्कि इसके माध्यम से प्रेम की उदारता की ओर संकेत किया गया है।

fo'k"k

1) प्रस्तुत गद्यांश 'प्रसाद' जी की मानवतावादी जीवन दृष्टि का सूचक है।
2) प्रेम के उदात्त रूप की चर्चा की गई है जिसमें किसी तरह के कलुष की कोई संभावना नहीं।
3) शैली विचार और विश्लेषण प्रधान है।
4) i) भाषा में भाव और विचार की ऊर्जा के साथ-साथ बोलचाल की रवानी है।
   ii) ''हाथ धो बैठना'' मुहावरा प्रयुक्त हुआ है इसका अर्थ है खो देना।

m)j.k 3

''इस प्रथम संभाषण के लिए कृतज्ञ हुई महाराज! किंतु मैं भी यह जानना चाहती हूँ कि गुप्त साम्राज्य क्या स्त्री-संप्रदान से ही बढ़ा है?''

lnHk····(पहले उद्धरणों की भाँति)

....

....

....

....

....

izlax

शकों ने रामगुप्त के शिविर को दोनों तरफ से घेर लिया है। ऐसी स्थिति में रामगुप्त के पास दो ही विकल्प हैं युद्ध करके शकों को परास्त करे या उनका संधि-प्रस्ताव स्वीकार करे। रामगुप्त को शंका है कि ध्रुवस्वामिनी महादेवी बन जाने के बावजूद चंद्रगुप्त से प्रेम करती है और किसी भी समय उसके लिए खतरनाक सिद्ध हो सकती है। इसलिए वह भीतर बाहर के सभी शत्रुओं को एक ही चाल में परास्त करना चाहता है। शकराज का संधि-प्रस्ताव स्वीकार करके वह ध्रुवस्वामिनी को उसके पास भेजने को तैयार है। वह योजना बना कर शिखरस्वामी के साथ ध्रुवस्वामिनी से मिलने आता है। इससे पहले वह उसके पास कभी नहीं आया। कभी उसने ध्रुवस्वामिनी से बातचीत भी नहीं की। अब ध्रुवस्वामिनी के पास आकर दोनों इस तरह व्यवहार कर रहे हैं कि वे अचानक ही वहाँ पहुँचे हैं। शिखरस्वामी शकराज के प्रस्ताव की सूचना देता है। रामगुप्त ऐसा व्यवहार करता है जैसे वह कुछ जानता ही नहीं। ध्रुवस्वामिनी उन दोनों के व्यवहार से अत्यंत क्षुब्ध होती है।

O;k[;k

रामगुप्त द्वारा उपेक्षा और अपमान की वेदना से ध्रुवस्वामिनी पहले ही क्षुब्ध थी, ऊपर से इस व्यवहार को पाकर वह रामगुप्त पर व्यंग्य करती है कि इस प्रथम संभाषण के लिए अपने पति की कृतज्ञ है। यहाँ 'कृतज्ञ' शब्द का व्यंजनाश्रित प्रयोग है। वह अपने सामान्य अर्थ से विपरीत अर्थ का द्योतक है। शाब्दिक अर्थ है कि वह रामगुप्त की कृपा का उपकार स्वीकार कर रही है किंतु निहित अर्थ है कि यह वस्तुतः उसकी कृपा नहीं अत्याचार है जिससे उसे अपार कष्ट पहुँचा है। इस वाक्य से वह रामगुप्त को उलाहना देती है कि अब तक उसने एक बार भी अपनी पत्नी से बात नहीं की। पहली बार जो बात की है वह भी कितने स्नेह विहीन, अनुत्तरदायित्वपूर्ण और अपमानजनक ढंग से की है। अपने अगले वाक्य में वह और भी तीखा व्यंग्य करती है कि अपने शौर्य और पराक्रम के लिए विख्यात गुप्त साम्राज्य का विस्तार क्या अपनी कुल-वधुएँ अन्य लोगों को भेंट में देकर किया गया है। इस तरह वह रामगुप्त के संपूर्ण व्यक्तित्त्व को ललकारती है। यहाँ कटु व्यंग्य के माध्यम से भर्त्सना की गई है। यह प्रश्न वस्तुतः प्रश्न मात्र नहीं है। यहाँ रामगुप्त को उसकी कारयता और धृष्टता का अहसास कराने का प्रयास है। गुप्त साम्राज्य के अद्वितीय गौरव को स्मरण कराके रामगुप्त को उसके छोटेपन का अहसास कराने की कोशिश की है इस आशा के साथ कि शायद अपनी और अपने कुल की भर्त्सना सुन कर ही रामगुप्त में आत्मग्लानि पैदा हो और वह अपने और अपनी पत्नी के सम्मान की रक्षा का प्रयास करे।

fo'ks"k

1) प्रस्तुत वाक्य तीखे व्यंग्य का अत्यंत उत्कृष्ट उदाहरण हैं।
2) भाषा की व्यंजना शक्ति कितनी प्रबल होती है यह यहाँ देखा जा सकता है। यहाँ दो वाक्यों में जो कुछ कह दिया गया है उसे अभिधापरक प्रयोग के द्वारा पूरे पैराग्राफ में नहीं कहा जा सकता था।
3) तत्सम शब्दों का प्रयोग होते हुए भी भाषा में बोलचाल की सहजता है।

m)j.k 4

''कौन महादेवी! राजा, क्या अब भी मैं महादेवी ही हूँ? जो शकराज की शैय्या के लिए क्रीतदासी की तरह भेजी गई हो, वह भी महादेवी! आश्चर्य!''

lanHkZ

पूर्व उद्धरण की भाँति

....

....

....

izlax

चंद्रगुप्त द्वारा शकों पर विजय की सूचना पाकर रामगुप्त अपने सैनिकों के साथ दुर्ग में आ जाता है। वहाँ निरीह शकों की हत्या कराके अपनी शक्ति का मिथ्या प्रदर्शन करता हैं जब सामंत कुमार उसके इस आचरण का विरोध करते हैं तो वह उन्हें बंदी बनवा लेता है। फिर वह सैनिकों को आदेश देकर चंद्रगुप्त को भी बंदी बनवा लेता है। ध्रुवस्वामिनी चंद्रगुप्त से प्रतिवाद करने के लिए कहती है किंतु वह चुप रहता है। रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को डाँटते हुए कहता है ''महादेवी! चुप रहो।'' तब ध्रुवस्वामिनी दृढ़तापूर्वक पूछती है।

O;k[;k

'महादेवी' का संबोधन उसके लिए कहाँ तक और किस तरह उपयुक्त है? क्या इतना सब हो जाने के बाद भी वह महादेवी बनी रह सकती है? महादेवी वह पदवी है जो किसी राजा की रानी को दी जाती है, उसे राजा के समकक्ष सम्मान मिलता है। किंतु राजा रामगुप्त ने महादेवी को शकराज के पास उपहार स्वरूप भेज दिया, वैसे ही जैसे किसी खरीदी हुई दासी को किसी भी व्यक्ति के पास भेज दिया जाए। उसे न तो पत्नी का अधिकार मिला, न ही महादेवी का। पति होने के नाते रामगुप्त को अपने और अपनी पत्नी के सम्मान की रक्षा करनी चाहिए थी न कि शकराज के भोग-विलास के साधन के रूप में उसके पास जाने का आदेश देना चाहिए था और राजाधिराज होने के नाते उसे महादेवी ध्रुवस्वामिनी के गौरव की रक्षा जी-जान से

करनी चाहिए थी। भोग-विलास के उपहार के रूप में भेजी गई स्त्री का स्थान खरीदी हुई दासी से अधिक नहीं है। जो स्त्री किसी दूसरे को दे दी गई वह अपने पूर्व गौरव और पद दोनों से वंचित की जा चुकी है। उसे पूर्व सम्मानपूर्ण नाम 'महादेवी' से पुकारना न केवल अनाधिकारपूर्ण चेष्टा है, बल्कि रामगुप्त की निर्लज्जता का सूचक भी है। ध्रुवस्वामिनी का यह कथन रामगुप्त के प्रति धिक्कार का संकेत है। इस बात को ध्रुवस्वामिनी व्यंग्यपूर्वक कहती है कि उसे आश्चर्य है कि शकराज की शैय्या के लिए यानी उसके विलास के लिए भेजे जाने के बावजूद भी क्या रामगुप्त उस पर अपना अधिकार समझता है।

fo'ks"k

1) इस कथन के माध्यम से ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त पर व्यंग्य करने के साथ-साथ पुरुष के अधिकारों की व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगाती है और स्त्री के अधिकारों की अप्रत्यक्ष रूप से माँग करती है।
2) भाषा में बोलचाल की सहजता है।
3) शैली व्यंग्यात्मक है।

vH;kl

नीचे 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के कुछ अंश उद्धृत किए जा रहे हैं, उनकी संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

m)j.k 1

''भयानक समस्या है। मूर्खों ने स्वार्थ के लिए साम्राज्य के गौरव का सर्वनाश करने का निश्चय कर लिया है। सच है वीरता जब भागती है तो उसके पैरों से छल-छंद की धूल उड़ती है।''

lanHkZ

नाटक और नाटककार की चर्चा

....

....

....

izlax

प्रस्तुत कथन किस पात्र का है?

....

....

....

किस प्रसंग में उसने यह बात किसे कही है?

....

....

....

0;k[;k

....

....

....

....

....

fo'ks"k

1) कथा की विशेषता (उसका मूल भाव)

....

....

2) भाषा

....

....

3) शैली

4) अन्य

m)j.k 2

''कुछ नहीं, मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु संपत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते तो मुझे बेच भी नहीं सकते। हाँ तुम लोगों को आपत्ति से बचाने के लिए मैं स्वयं यहाँ से चली जाऊँगी।''

lnHk

नाटक और नाटककार की चर्चा

i lx

प्रस्तुत कथन किस पात्र का है?

किस प्रसंग में उसने यह बात किससे कही है?

0;k[;k

fo'k"k

1) कथा का मूल भाव

2) भाषा

3) शैली

4) अन्य

m)j.k 3

''तोड़ डालूँ पिताजी! मैंने जिसे अपने आसुँओं से सींचा, वही दुलार भरी बल्लरी, मेरे आँख बंद कर चलने में मेरे ही पैरों से उलझ गई है। दे दूँ एक झटका - उसकी हरी-हरी पत्तियाँ कुचल जाएँ और वह छिन्न होकर धूल में लौटने लगे? ना, ऐसी कठोर आज्ञा न दो!''

lanHkZ

....

izlax

....

O;k[;k

....

fo'ks"k

1) मूलभाव

....

2) भाषा

....

3) शैली

....

4) अन्य

....

27-4 lkjka'k

इस इकाई में आपने नाटककार जयशंकर 'प्रसाद' तथा उसके नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त की। फिर आपने 'ध्रुवस्वामिनी' का वाचन किया। वाचन करते समय इनमें प्रयुक्त कठिन शब्दों के अर्थ जाने और इसमें आए विभिन्न ऐतिहासिक पौराणिक संदर्भों की जानकारी प्राप्त की। अब आप इसकी भाषा-शैली और कथ्य का परिचय प्राप्त हो गया है। कथा में आए महत्त्वपूर्ण मोड़ों और विविध पात्रों की वैयक्तिक विशेषताओं पर आपने गौर किया होगा। यदि वैसा नहीं कर पाये हैं तो इस नाटक को एक बार फिर से पढ़ें। हालाँकि इन पक्षों की विस्तृत चर्चा हम अगली इकाइयों में करेंगे फिर भी मूल नाटक को अच्छी तरह समझना आपके लिए ज़रूरी है। ऐसा करके ही आप इस नाटक के किसी अंश की संदर्भ सहित व्याख्या कर सकेंगे। हमने यहाँ आपको कुछ अंशों की व्याख्या करके दिखाई है। उस व्याख्या को ध्यान से पढ़ें। इससे आपको पता लगेगा कि किसी गद्यांश की व्याख्या करते समय उसके कठिन शब्दों के स्थान पर सही शब्दों का प्रयोग कर देना मात्र पर्याप्त नहीं है। उन शब्दों के पीछे निहित लेखकीय आशय को पकड़ना भी जरूरी है। कई बार लेखक बड़ी सांकेतिक भाषा का प्रयोग करता है। उन संकेतों को पकड़ कर हम उनमें निहितार्थ का भली-भाँति पता लगा सकेंगे।

27-5 cks/k iz'uksa@vH;klksa ds mÙkj

cks/k iz'u

1. जब रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को शकराज के पास चले जाने की आज्ञा देता है और यह बात सुनकर ध्रुवस्वामिनी कृपानी निकालकर आत्महत्या का प्रयास करती है, तभी चन्द्रगुप्त का प्रवेश होता है।
2. शकराज ध्रुवस्वामिनी और अन्य सामंतों के लिए स्त्रियों की मांग करता है।
3. चंद्रगुप्त शकराज के पास स्त्री वेश धारणा करके स्वयं ध्रुवस्वामिनी के रूप में शकराज के पास जाने का प्रस्ताव करता है।
4. पुरोहित तथा परिषद के सदस्य रामगुप्त को पद से हटाने और रामगुप्त और ध्रुवस्वामिनी के विवाह को धर्मशास्त्र के प्रतिकूल घोषित करते हैं।
5. यह ध्रुवस्वामिनी का कथन है। गुप्तकुल की वधु तथा राजाधिराज रामगुप्त की महादेवी बन जाने पर ध्रुवस्वामिनी को बड़ा ही अपमानपूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है इसलिए वह अपने आपको सोने के पिंजरे में कैद पंछी की भाँति महसूस करती है।
6. यह ध्रुवस्वामिनी का कथन है। उसके विवाह को कई दिन हो चुके हैं किंतु उसके पति राजाधिराज रामगुप्त ने उससे अभी तक एक बार भी बातचीत नहीं की है। उसे इस अपमान की पीड़ा है। तभी सेविका कहती है कि अमात्य उससे मिलना चाहते हैं। इस पर ध्रुवस्वामिनी यह व्यंग्य भरे वचन कहती है।
7. वह व्यंग्यपूर्ण वचन ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त से कहती है। उसकी रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग को तैयार चंद्रगुप्त के प्रति उसका स्नेहभाव प्रकट हो जाता है। रामगुप्त इसके लिए उसे लज्जित करने का प्रयास करता है तो ध्रुवस्वामिनी ये क्रोधपूर्ण व्यंग्य वचन कहती है।
8. यह मिहिरदेव का कथन है। शकराज के अनीतिपूर्ण कार्यों के परिणामस्वरूप भावी अनिष्ट की ओर ध्यान दिलाते हुए वे कोमा को सावधान करते हैं कि उसकी भलाई यहाँ से चले जाने में ही है।
9. ध्रुवस्वामिनी के यह वचन नारी जागृति की भावना के सूचक हैं। वह रामगुप्त को ध्यान दिलाती है कि इतने अन्याय के बावजूद भी क्या उसका हृदय ध्रुवस्वामिनी पर अपना अधिकार समझता है और यदि समझता है तो यह गलत है।

vH;kl

उद्धरण 1, 2 और 3 की संदर्भ और प्रसंग सहित व्याख्या के लिए 'ध्रुवस्वामिनी' को ध्यान से पढ़ें और कुछ उद्धरणों की जो व्याख्या इकाई में दी गई है, उनको समझते हुए स्वयं व्याख्या लिखें।